चन्दामामा
जून १९६५
GDP

बच्चों के लिये
स्वास्थ्यवर्द्धक
टॉनिक
लाल-शर
(डाबर बालामृत)
बच्चों के सुन्दर स्वास्थ्य और शारीरिक विकास के लिये मन-पसन्द मीठी पुष्टई।
८२ वर्षों से जन-कल्याण
में संलग्न
डाबर
(डा० एस० के० बर्म्मन) प्राइवेट लि०,
कलकत्ता-२६

अगले अंक से

"चन्दामामा" के चन्दे में परिवर्तन

आजकल के अधिक कर व तंगियों के कारण मूल्य बहुत बढ़ गये हैं। इसलिए "चन्दामामा" के मुद्रण का खर्च भी अधिक हो गया है। इस कारण हम विवश हो, अगले अंक से "चन्दामामा" का दाम ७५ पैसे कर रहे हैं।

एक प्रति	सालाना चन्दा एक वर्ष	चन्दा दो वर्ष
०-७५ पैसे	रु. ८-४०	रु. १५-६०

वर्तमान चन्दादारों पर यह वृद्धि नहीं लागू होगी। परन्तु चन्दा खतम होने पर, उनको परिवर्तित दाम पर, चन्दा देना पड़ेगा।

हम आशा करते हैं कि हमेशा की तरह "चन्दामामा" को आपका समर्थन मिलता रहेगा। —प्रकाशक

२५ से अधिक वर्षों से लोकप्रिय
सोल
डिस्ट्रिब्यूटर्स:
जे. एल. मोरिसन,
सन एण्ड जोन्स
(इण्डिया) प्राइवेट लि.
बम्बई - दिल्ली - मद्रास
कानपुर - कलकत्ता
Asha
SNOW
Asha
आशा स्नो, फेस पाउडर, काजल तथा अन्य सौंदर्य प्रसाधन
Unigus-M-2-HD
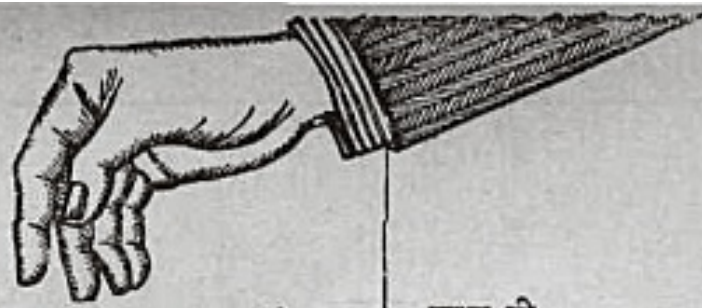
यह आप ही का हाथ है

जो यदि पैसों की बचत करे
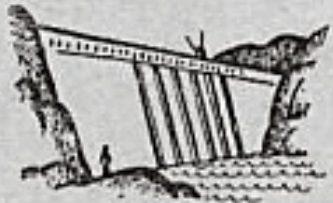
तो बांध पर बांध बनें
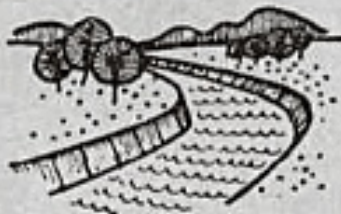
जिनसे नहरों में पानी आयेगा

पानी से खेतों में सिंचाई होगी

और हम सबके लिए काफी
भोजन उपलब्ध होगा ।

और पैसा ज्यों का त्यों आपके नाम में
और वह भी ब्याज के साथ !

आज ही
डाकघर
बचत
बैंक में
खाता खोलिए

४% करमुक्त ब्याज
रुपया जमा करने और
निकालने पर कोई सीमा नहीं
चैक से रुपया निकालने की सुविधा

डाकघर बचत बैंक के जरिये आप
बड़ी आसानी से बचत कर सकते हैं।
इसके लिए जरूरत है सिर्फ २ रु० की
और थोड़ी सी मन की दृढ़ता की।
इस खाते को बच्चे भी चला सकते हैं।
अपने बच्चे का खाता खोलकर
उसे बचत करने का अभ्यास कराइए।

आपकी बचतें न सिर्फ अपने लिए बल्कि
देश के लिए भी सहायक होती हैं।
आपके पैसों से बड़े बड़े उद्योग और
योजनाएं शुरू की जाती हैं
जिनमें हरेक पैसा एक सहारा बनता है।
और फिर आपका पैसा सुरक्षित रहता है
जिसमें ब्याज भी जुड़ता जाता है।

देश की मदद कीजिए
अपनी मदद आप कीजिए

याद रखिए
आज की बड़ी बड़ी बचत-रकमें
कभी एक बूंद बराबर थीं।

राष्ट्रीय बचत संगठन

डीए ६५/१०

दिलीप और साथी चिड़ियाखाने जब पहुँचे
इसको बादाम खाते हुए देखो तो भला !
आगे बढ़ो ! नमस्ते बंदर महाराज !
चलो। हम लोग बाघ देखें !
मुझे हिरन ज्यादा पसन्द है !
यह सो रहा है !
मैं समझता हूँ, जाग रहा है !
अरे, ज्यादा नजदीक मत जाओ !
अजी दिलीप, वहाँ वह बड़ी-सी भीड़ तो देखो। चलो, हम लोग भी देखें कि लोग क्या देख रहे हैं !
हर कोई क्या देख रहा है !
एक महिला की कीमती अंगूठी गिर गई है—किसी को मिल नहीं रही है !
जल्दी—मुझको जाने दीजिये। अपने 'एवरेडी' टॉर्च से मैं जरूर ढूंढ निकालूँगा !
मिल गई मुझे, —उस बेंच के नीचे है !
आह—मैं कितनी खुश हुई। कितने अच्छे लड़के हो तुम !
कितनी भली हैं ये कि हम लोगों को आइस-क्रीम खिलाया !
हाँ—मगर एक 'एवरेडी' टॉर्च बराबर साथ रखिये ! पता नहीं कि कब उसकी ज़रूरत पड़े !
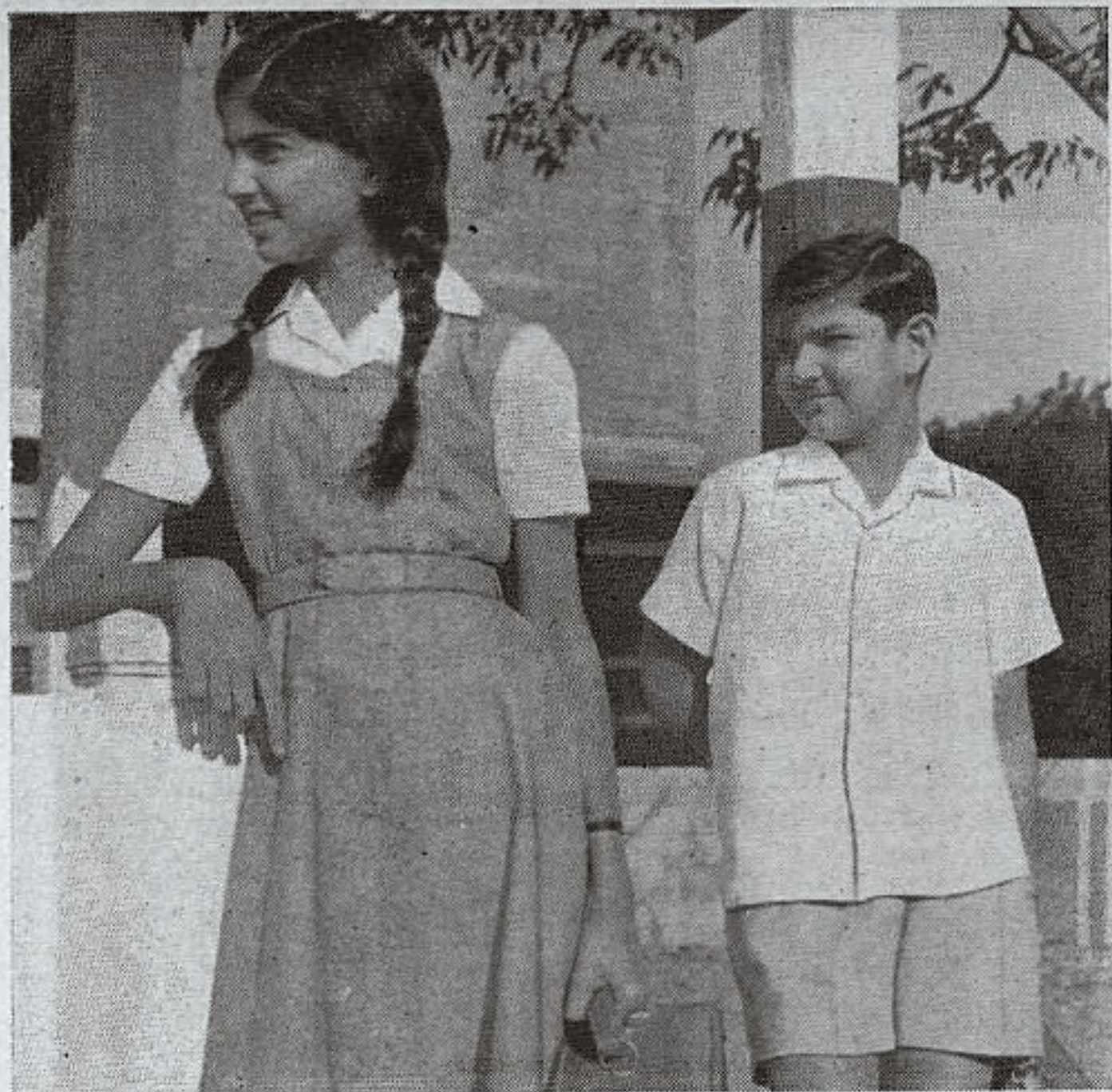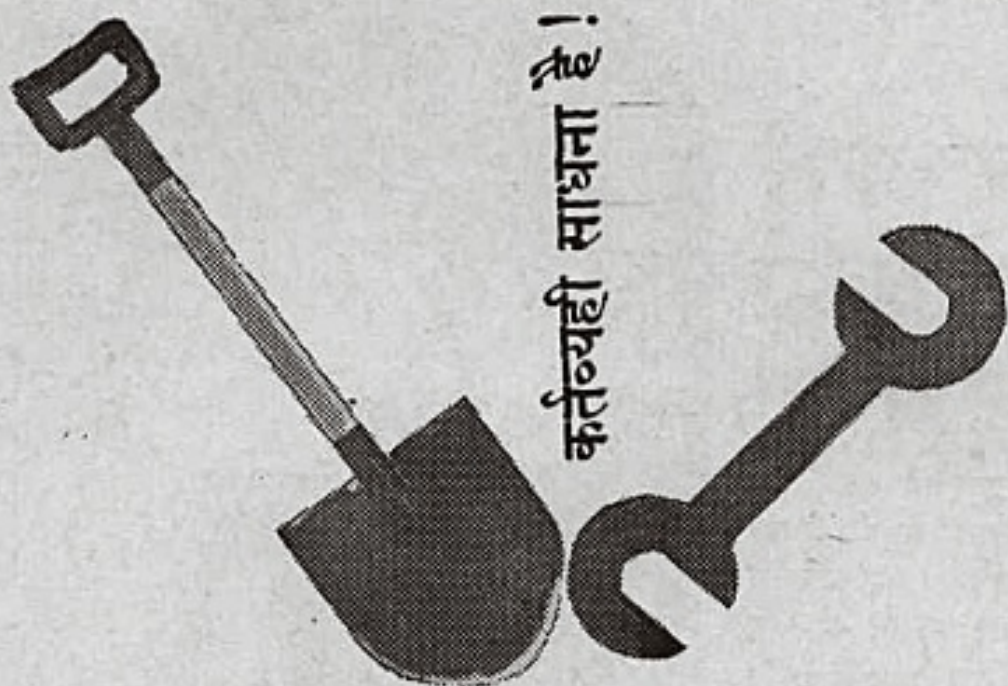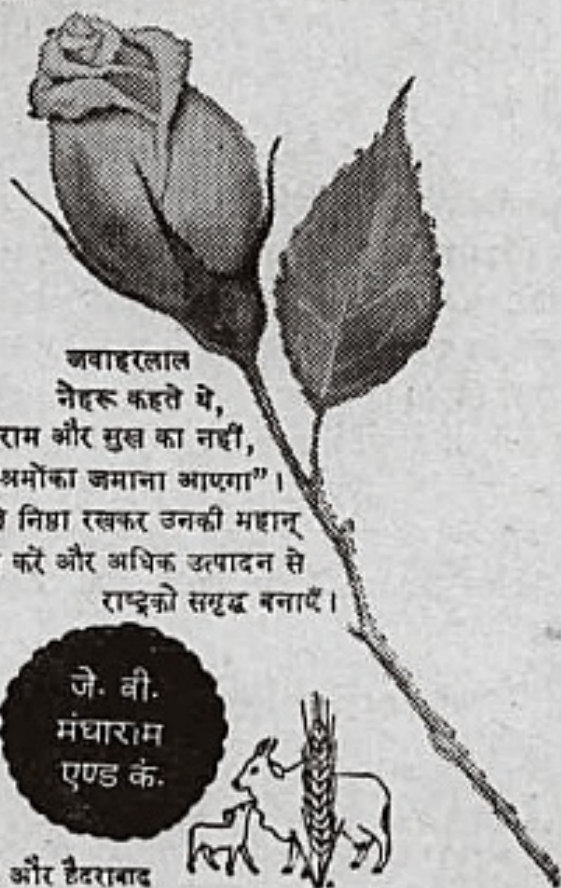
कर्तव्यही साधना है!
जवाहरलाल
नेहरू कहते थे,
"भविष्यमें आराम और सुख का नहीं,
किन्तु निरन्तर परिश्रमोंका जमाना आएगा"।
आएँ, हम भी कर्तव्यके प्रति निष्ठा रखकर उनकी महान्
आत्माको श्रद्धाञ्जलि समर्पित करें और अधिक उत्पादन से
राष्ट्रको समृद्ध बनाएँ।
जे. बी.
मंघाराम
एण्ड कं.
ग्वालियर और हैदराबाद
OJB-138 HIN

सीखने में देर क्या सबेर क्या!

नन्हे बालक जल्द ही सीख जाते हैं कि पौधे पानी से ही जिन्दा रहते और बढ़ते हैं। यह साधारण सत्य एक बार सीखने के बाद भूलता नहीं।

चन्दामामा

संचालक: चक्रपाणी

हमें यह सूचना देते हुए खेद होता है कि जुलाई से हमें "चन्दामामा" का मूल्य ७५ पैसे करना पड़ रहा है। प्रति रोज कर और खर्च बढ़ रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में हमने यह निर्णय किया कि "चन्दामामा" की पृष्ट संख्या घटाने की अपेक्षा अधिक अच्छा मूल्य वृद्धि ही होगा।

फिर भी जो एक साथ दो साल का चन्दा देंगे, उनके लिए यह वृद्धि अधिक असुविधाजनक न होगी। वे आज जो "चन्दामामा" के एक प्रति के लिए खर्च कर रहे हैं उससे केवल पाँच पैसे ही अधिक देंगे और जो एक साल का चन्दा देंगे, उनको हर प्रति के लिए दस पैसे अधिक देने होंगे।

वर्ष: १६ जून १९६५ अंक: १०
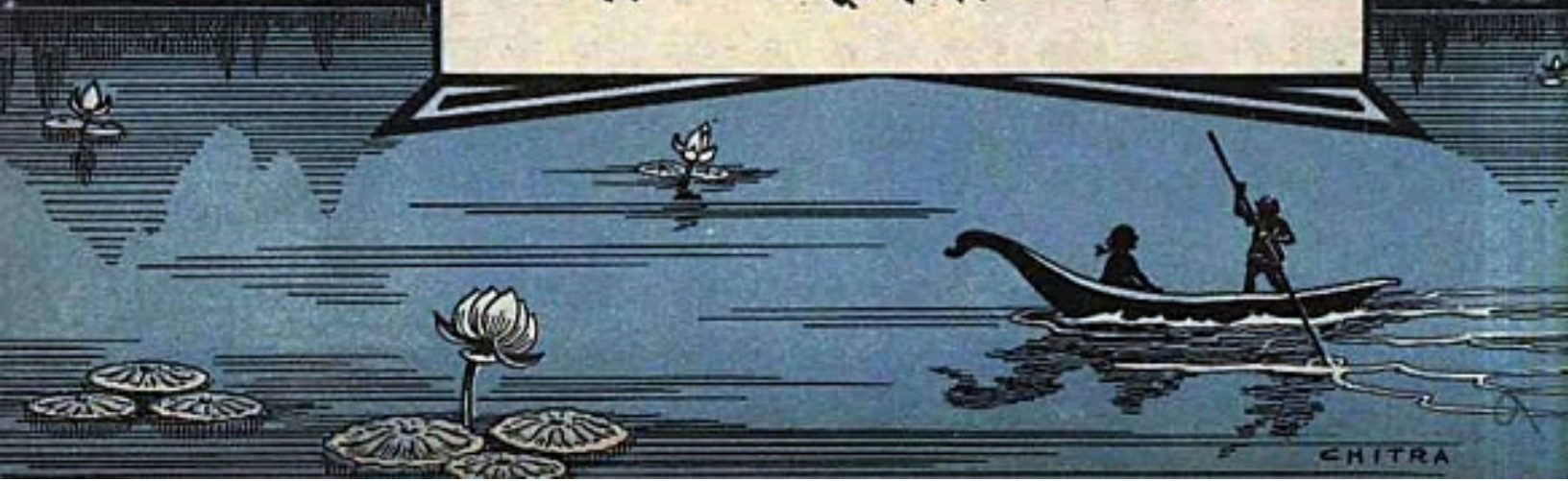
भारत का इतिहास

जब राजपूत राज्य एक के बाद एक बादशाह अकबर के वश में आ रहे थे, तो केवल मेवाड़ ने उसके सामने घुटने टेकने से इनकार कर दिया। उदयसिंह ने अपना राज्य खो दिया था, पर उसने अपनी स्वतन्त्रता नहीं खोई थी। १५७२ वह उदयपुर से १९ मील दूर गोगुन्दा नामक स्थल पर मर गया। उसके बाद उसके लड़के प्रताप ने मेवाड़ का इस प्रकार नेतृत्व किया कि उसकी समानता का उदाहरण कहीं नहीं मिलता है। उसने अपने वंश पर कलंक न आने दिया और मुगलों का यथाशक्ति विरोध किया। उसका युद्ध बड़ा कष्टमय था, उसकी कोई राजधानी न थी। किसी की कोई खास मदद भी न थी और उसका विरोधी था "संसार का अद्वितीय सम्पन्न" दिल्ली बादशाह।

एप्रिल १५७६ में मुगल सेनायें अकबर के राजा मानसिंह के नेतृत्व में और असफखान के नेतृत्व में प्रताप के राज्य पर आक्रमण किया। गोगुन्दा के समीप हल्दीघाटी में घोर युद्ध हुआ। उसमें प्रताप पराजित हुआ। उस युद्ध में प्रताप मर गया होता पर झूल के राजा ने यह घोषित करके कि वह ही राणा था शत्रु का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित किया और प्रताप को जीवित भागने का मौका दिया। वह अपने प्रसिद्ध घोड़े "चेतक" पर सवार होकर, पहाड़ों में भाग गया। उसके किले एक के बाद एक अकबर के हाथ आ गये। इतनी हालत बिगड़ गई थी, पर प्रताप ने हार मानने की नहीं सोची। शत्रु, उसका शिकार-सा कर रहे थे। उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे और

वह शत्रु से बचकर, एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर जाता रहा। जंगली जड़ी बूटी खाकर, अपना और अपने परिवार का पोषण करता गया। उसने बड़े पराक्रम से शत्रुओं का मुकाबला किया और अपने किलों में से कई अपने वश में फिर कर लिए। यह युद्ध वह अपने जीवन-भर करता रहा। १९ जनवरी १५९७ में जब उसकी उम्र ५७ वर्ष की थी वह मर गया। राणा प्रताप भारत के इतिहास में एक अद्भुत व्यक्ति है। यह सच है कि राजपूतों में उससे बढ़कर युद्ध विशेषज्ञ और शासक थे, पर देश भक्ति में और पराक्रम में उसकी बराबरी का कोई न था।

अकबर ने अस्वस्थ होने के कारण, फिर मेवाड़ पर आक्रमण नहीं किया। पर तब तक उसने कई और प्रान्त जीत लिए थे। उनमें मुख्य है, गुजरात की विजय। बन्दरगाहों के कारण, व्यापार की सुविधाओं के कारण, शुरु से ही, दिल्ली के बादशाहों की उस पर नज़र थी। गुजरात का नाम मात्र का सुल्तान मुजफ्फर शाह अयोग्य था। अकबर ने स्वयं गुजरात पर आक्रमण किया, युद्ध में विजय पाकर, गुजरात के सुल्तान को गुजारे के लिए धन देकर हटा दिया। सूरत नगर डेढ़ मास के घेरे के बाद, २० फरवरी १५७३ को अकबर के वश में आ गया। उसी समय पोर्चुगीज़ों का अकबर से परिचय हुआ। वे उसकी मैत्री चाहते थे।

परन्तु अकबर अपनी राजधानी फतहपुर सीकरी पहुँचा था कि गुजरात में फिर विद्रोह होने लगे। उसके आदमी भी उसमें शामिल थे। अकबर ने क्रुद्ध होकर, ६०० मील का फासला, ग्यारह दिन में तय करके, अहमदाबाद पहुँचकर, विद्रोह

का दमन किया। सितम्बर १५७३ को गुजरात मुगल साम्राज्य का एक अंग हो गया, इसके कारण राज्य का आर्थिक रूप से बड़ा लाभ हुआ, मुगलों का पोर्गचुीज़ों से सम्बन्ध ही न हुआ, बल्कि समुद्र के किनारे बन्दरगाह भी मिल गये। परन्तु मुगलों ने नौका बल का निर्माण करने की नहीं सोची। इसी कारण पाश्चात्य देश, भारत में आसानी से आ सके।

गुजरात के बाद, बंगाल अकबर के वश में आया। बंगाल के शासकों ने सूर वंश के सुल्तान मुहम्मद आदिल शा के काल में ही स्वतन्त्रंता घोषित करके, १५६४ तक शासन किया। इसके बाद, बिहार क गवर्नर ने बंगाल का शासन भी अपने हाथ में ले लिया। १५७२ में इस गवर्नर (सुलेमान) के मरने के बाद, उसके लड़के दाऊद ने अकबर के खिलाफ बगावत की और उसके गुस्से का शिकार हुआ। १५७४ में अकबर सेना के साथ बंगाल आया और दाऊद को हटाया। मुनीम खान के पास अपनी सेना बंगाल में छोड़कर वह वापिस चला आया। दाऊद उड़ीसा पहुँचा। ३ मार्च १५७५ में उसने सुवर्ण रेखा के किनारे मुगलों से युद्ध किया और वहाँ हरा दिया गया। परन्तु मुनीम खान की नरमी के कारण, उसे हारकर भी सजा न मिली। उस साल ओक्टोबर में, फिर उसने बंगाल जीतने की सोची। आखिर १५७६ जुलाई में राजमहल के पास हुए युद्ध में, वह मारा गया। परन्तु १५९२ तक बंगाल के कुछ स्थानीय शासक मुगल सल्तनत के खिलाफ बगावत करते रहे।

नेहरू की कथा

[११]

प्रारम्भिक काल में जवाहरलाल नेहरू की राजनीति केवल मध्यवर्ग की राजनीति थी। सच कहा जाय, तो उन दिनों राजनैतिक चेतना, मध्यमवर्ग से ही आयी थी। राजनीति में चाहे वे उदारदल के हों अथवा उग्रदल के, दोनों ही मध्यमवर्ग के थे। इसलिए जवाहरलाल कल करखाने के मज़दूरों और किसान मज़दूरों के बारे में कुछ नहीं जानते थे। ऐसी हालत में, वे बिना विशेष सोचे ही, किसानों के सम्पर्क में आये। वह यूँ हुआ।

माता और पत्नी की बीमारी के कारण और मोतीलालजी के किसी बड़े मुकदमे में व्यस्त होने के कारण जवाहरलाल नेहरू १९२० मई के प्रारम्भ में उनको मसूरी ले गये और वहाँ वे सेवोय होटल में ठहरे।

उससे पिछले साल ब्रिटिश लोगों ने अफगानिस्तान में एक युद्ध किया था। दोनों तरफ के लोगों में सन्धि वार्तालाप हो रहा था और उसी सिलसिले में अफगानिस्तान के प्रतिनिधि सेवोय होटल में ही ठहरे हुए थे। जवाहरलाल ने उनके बारे में कोई दिलचस्पी न दिखाई, देखा भी नहीं, देखा भी हो, तो पहिचाना नहीं।
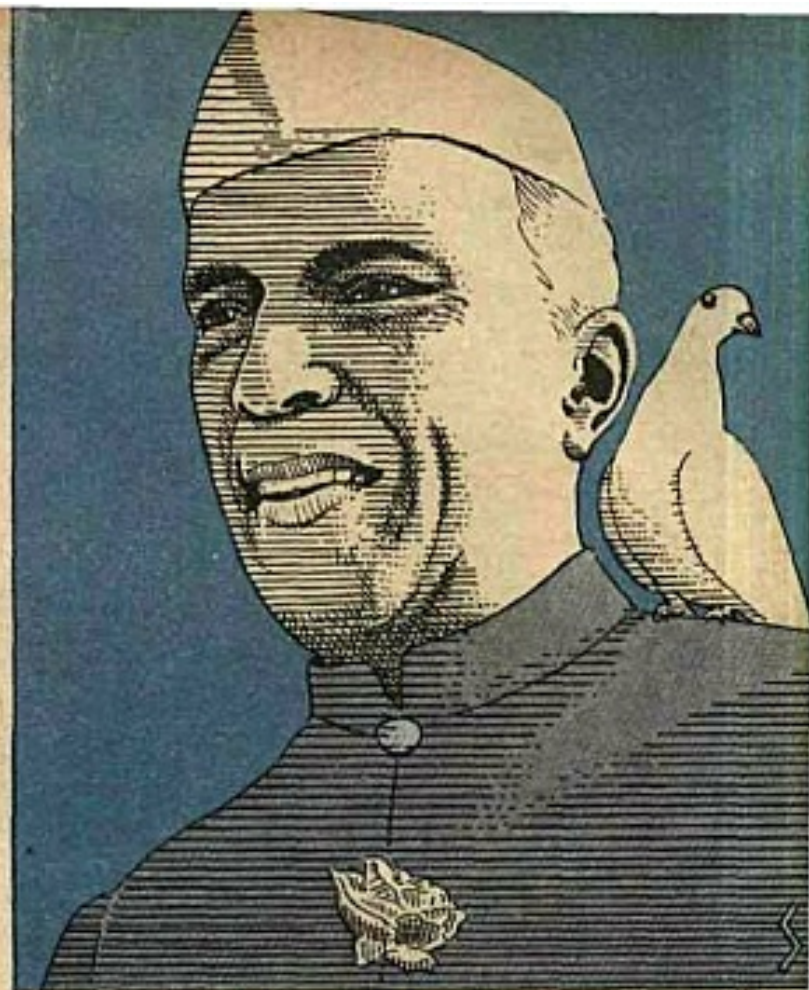
इस तरह एक महीना गुजर जाने के बाद एक दिन शाम को पोलीस अफसर ने आकर एक आज्ञा दी। स्थानीय सरकार यह चाहती थी कि वे यह वचन दे कि अफगान प्रतिनिधियों से वे किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं करेंगे।

वचन देने से जवाहरलाल नेहरू को कोई हानि नहीं थी। परन्तु इस प्रकार के

पूर्ण आज्ञा दी गई थी। दो सप्ताह बाद जवाहरलाल नेहरू की माता की बीमारी और बढ़ गई। पिता और पुत्र दोनों ही मसूरी गये। उसी समय जवाहरलाल नेहरू पर लागू की गई आज्ञा, सरकार ने रद्द कर दी थी।

जब वे अगले दिन मसूरी पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि होटल के प्रांगण में एक अफगान प्रतिनिधि इन्दिरा को गोद में लिए खड़ा था। जब से अफगान प्रतिनिधियों को मालूम हुआ था कि जवाहर को वैसी आज्ञा दी गई थी, तब से वे जवाहरलाल नेहरू की माता के पास फल, फूल वगैरह, भेज रहे थे।

एक दो प्रतिनिधियों ने जवाहरलाल और मोतीलाल से परिचय किया और उन्होंने उनको अफगानिस्तान बुलाया भी।

मसूरी से भेज दिये जाने के बाद जवाहरलाल नेहरू एक सप्ताह अलाहाबाद में रहे और उन्हीं दिनों वे किसान आन्दोलन में हिस्सा लेने लगे। धीरे धीरे वे उस आन्दोलन में और भी अधिक दिलचस्पी लेने लगे। इस कारण उनका दृष्टिकोण बहुत बदल गया।

वचन देना, उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इसलिए उन्होंने सुपरिटेन्डेन्ट को वचन देने से इनकार कर दिया। जिला मेजिस्ट्रेट को देखने के लिए कहा गया। पर जवाहरलाल नेहरू ने अपना उद्देश्य नहीं बदला। इसके परिणाम स्वरूप सरकार ने आज्ञा दी कि वे चौबीस घंटों में देहरादून जिले से चले जायें। यानि कुछ घंटों में वे मसूरी छोड़ दें।

मोतीलाल उस प्रान्त के गवर्नर को कुछ कुछ जानते थे। उन्होंने गवर्नर को बताया कि उनके लड़के को कैसी मूर्खता

१९२० जून के प्रारम्भ में, दो सौ किसान प्रतापगढ़ जिले के मध्यप्रान्त से पचास मील की "यात्रा" करके अलहाबाद आये। वे बड़े बड़े राजनीतिज्ञों के सामने अपनी शिकायतें रखना चाहते थे। रामचन्द्र नाम का किसान उनका नेता था। यह जानकर कि वे यमुना के किनारे धरना दिये हुए थे जवाहरलाल नेहरू अपने मित्रों के साथ उनसे मिलने गये।

"आप हमारे साथ आकर हमारी परिस्थिति देखकर हमारी रक्षा कीजिये। आप यह भी देखिये कि हमारे अलाहाबाद आने के कारण कर्मचारी हमसे बदला न लें।" किसान रोये धोये। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू को छोड़ा नहीं।

वे कुछ आदमियों को लेकर, एक गाँव में तीन दिन रहे। वह गाँव रेल स्टेशन से बहुत दूर था। उस गाँव में जाने के लिए कंकड़ की सड़क भी न थी। ग्रामवासियों में उन्होंने असाधारण उत्साह देखा। खबर मिलते ही हजारों आदमी जमा हो जाते। खबर एक गाँव से दूसरे गाँव उड़ती उड़ती पहुँचती थी। ग्राम से लोग खेत पार करके सभा-स्थल पर आ जाते थे। कई बार "सीताराम" का जयजयकार गाँवों में गूँज उठता, तब भी लोग हजारों की संख्या में आकर जमा हो जाते। किसी किसी के शरीर पर, सिवाय चीथड़ों के कुछ न होता था। परन्तु उनके मुँहों पर एक विचित्र आनन्द झलकता था, मानों एक आशा कि उनके जीवन बदलेंगे और अच्छे दिन आयेंगे। इन किसानों के लिए जवाहरलाल नेहरू और उनके साथी, उनके उद्धारक से थे।

उनके आदर स्नेह को देखकर जवाहरलाल नेहरू कुछ लज्जित और दुःखी

15

हुए। अपना ठाट-बाट का जीवन, संकुचित राजनैतिक दृष्टिकोण देखकर, वे शर्मिन्दा हुए। भूखे नंगे भारत माता की सन्तान को इतनी संख्या में देखकर, वे कराह-से उठे। उनको लगा कि भारत में भूख और दारिद्र्य ताण्डव कर रहे थे। उन गरीबों का विश्वास देखकर उनको अपना दायित्व समझ में आया। सच कहा जाये, तो वे किसानों को तब यूँहि देखने आये थे।

उनकी कहानी एक अनन्त दुख और कष्ट की कहानी थी। दिन प्रतिदिन बढ़ता करों का भार, बेगारी, खेतों और घरों से उजाड़ दिया जाना, ज़मीन्दार और महाजनों का अत्याचार, पोलीस गिद्धों की तरह उनको नोंच नोंचकर खा रहे थे। दिन भर खून पसीना एक करके फसल पैदा करते। पर फसल उनकी न होती थी, उनके पास बचते भूख और घाव। उनमें से कई के पास इन्च भर ज़मीन न थी। झोंपड़ा तक न था। भूमि में सोना पैदा होता था, पर क्या लाभ? भूस्वामियों का दबाव अधिक था। ज़मीन्दार भी कितना कर बढ़ाते? वे इसलिए बेगारी वसूलते थे। किसान भी क्या करता? वह कुछ ज़मीन ठेके पर लेता, कर्ज लेता और जो कुछ पास होता उसे भी खोकर भूमि से खदेड़ दिया जाता।

यह न जाने कब से चला आ रहा है। यही कारण है कि कर्षक वर्ग पर दारिद्र्य दाग-सा दिया गया है। आखिर भण्डाफोड़ हुआ। १९२०-२१ में रामचन्द्र नाम के मराठी किसान के नेतृत्व में प्रतापगढ़ रायबरेली, फैजाबाद जिलों में किसानों में नई चेतना पैदा हुई।

[१२]

विमला के चले जाने के बाद, अपने कमरे में तिलोत्तमा कुछ सोचती सोचती बैठी रही। विमला से उसको मालूम हो गया था कि जगतसिंह किले में था और सकुशल था। रह-रहकर, उसका ध्यान उसकी ओर ही जा रहा था।

वह यूँ सोच रही थी कि आधी रात हो गई। तिलोत्तमा अंगूठी लेकर बाहर आयी। चारों ओर देखती सावधान होकर, वह अन्तःपुर के द्वार के पास आयी। वहाँ, सिपाही की बरदी में एक व्यक्ति ने पूछा—"क्या तुम्हारे पास अंगूठी है?" उसने अपनी अंगूठी उसको दिखाई। उसने उसको ध्यान से देखा, फिर अपने पास की अंगूठी दिखाकर उसने कहा—"चलिये...."

अन्तःपुर के सब पहरेदार पी-पाकर नशे में पड़े हुए थे। उस व्यक्ति ने तिलोत्तमा को किले के बाहर लाकर पूछा—"बताइये, आपको कहाँ ले जाऊँ?"

विमला ने क्या कहा था, तिलोत्तमा पूरी तरह भूल चुकी थी। बहुत देर सोचने के बाद, गदगद स्वर में उसने कहा—"जहाँ, जगत हो, वहाँ हमें भी ले जाइये।"

श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

"जगतसिंह ? जगतसिंह इस समय कैद में है। वहीं चलिए।" उस व्यक्ति ने कहा।

वह तिलोत्तमा को साथ लेकर, फिर किले में गया। जब वह कैदखाने के पास गया, तो वहाँ पहरेदार और पहरेदारों की तरह न थे, वे अपना काम अच्छी तरह निभा रहे थे।

तिलोत्तमा के साथ आये हुए आदमी ने अपने पास की अंगूठी दिखाकर पूछा—"राजकुमार कहाँ है?" पहरेदार ने जगतसिंह की कोठरी के पास जाकर कहा—"यहीं, जगे हुए हैं।"

"उस कोठरी का दरवाज़ा खोलो। ये उनको देखना चाहती हैं।" तिलोत्तमा के साथ आये हुए आदमी ने कहा।

जगतसिंह मामूली पलंग पर लेटा हुआ था। दरवाज़े के खुलने का शब्द सुनकर उसने उस ओर देखा। तिलोत्तमा दरवाज़ा पकड़े खड़ी थी, वह अन्दर कदम नहीं रख पा रही थी। उसके साथ आये हुए आदमी ने पूछा—"यह क्या? क्यों समय यों जाया कर रही हो?"

"यदि अन्दर जाने की इच्छा न हो, तो वापिस चले आओ। परन्तु वहाँ खड़े मत रहो।" पहरेदार ने कहा।

तिलोत्तमा की हालत यह थी कि वह पीछे भी कदम नहीं उठा पा रही थी और पहरेदार उसे, या तो, आगे जाने के लिए, नहीं तो जाने के लिए बार बार कह रहा था।

जगतसिंह ने पहिले तिलोत्तमा को पहिचाना तक नहीं, कैद कोठरी में स्त्री को पैर रखता देख, वह चकित भी था। पर पास से जो देखा, तो तिलोत्तमा थी। एक क्षण दोनों की चार

आँखें हुईं। फिर तिलोत्तमा की आँखें स्वतः झुक-सी गईं।

"वीरेन्द्रसिंह की लड़की?" जगतसिंह ने पूछा।

यह बात तिलोत्तमा के मन में बाण-सी लगी। क्या अब वह उसके लिए वीरेन्द्रसिंह की पुत्री मात्र है? क्या मेरा नाम "तिलोत्तमा" भी भूल गये हैं?

कुछ देर बाद उसने पूछा—"क्यों आये हो यहाँ?"

यह प्रश्न सुनकर भी उसको दुःख हुआ। उसका सिर चकराने लगा। वह उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। पर इस प्रश्न का क्या उत्तर हो सकता था?

"अरे क्यों, फिजूल हैरत में हो? जो हुआ है, उसे भूल जाओ।" जगतसिंह ने कहा।

तिलोत्तमा अपना दुर्भाग्य अच्छी तरह समझ गई। वह उस पेड़ की तरह ढ़ह-सी गई, जिसका तना काट दिया गया हो।

जगतसिंह यह सोचकर कि वह बेहोश हो गई थी, अपने दुपट्टे से, उस पर पंखा करने लगा। जब ऐसा करने पर भी, उसको होश न आया, तो उसने पहरेदार को बुलाया। तिलोत्तमा के पास आया, आदमी अन्दर आया।

"ये खड़ी-खड़ी बेहोश हो गई हैं। इनके साथ कौन आया था? उनको बुलाकर, इनका उपचार करवाओ।" जगतसिंह ने कहा।

"मैं, इन्हें लाया हूँ।" पहरेदार ने कहा।

"तुम? तब क्या किया जाय? तो किसी दासी को बुलाओ।"

पहरेदार के आने तक, जगतसिंह जैसी परिचर्या वह कर सकता था, वैसी उसने

की। उसे थोड़ा-थोड़ा होश आता-सा लगा। इतने में नावाब की लड़की अयाशा और एक स्त्री वहाँ आयी।

अयाशा ने जगतसिंह से पूछा—"यह कौन है? क्या बात है?" उसने मूर्छित तिलोत्तमा को दिखाया।

"यह वीरेन्द्रसिंह की लड़की है।" जगतसिंह ने कहा।
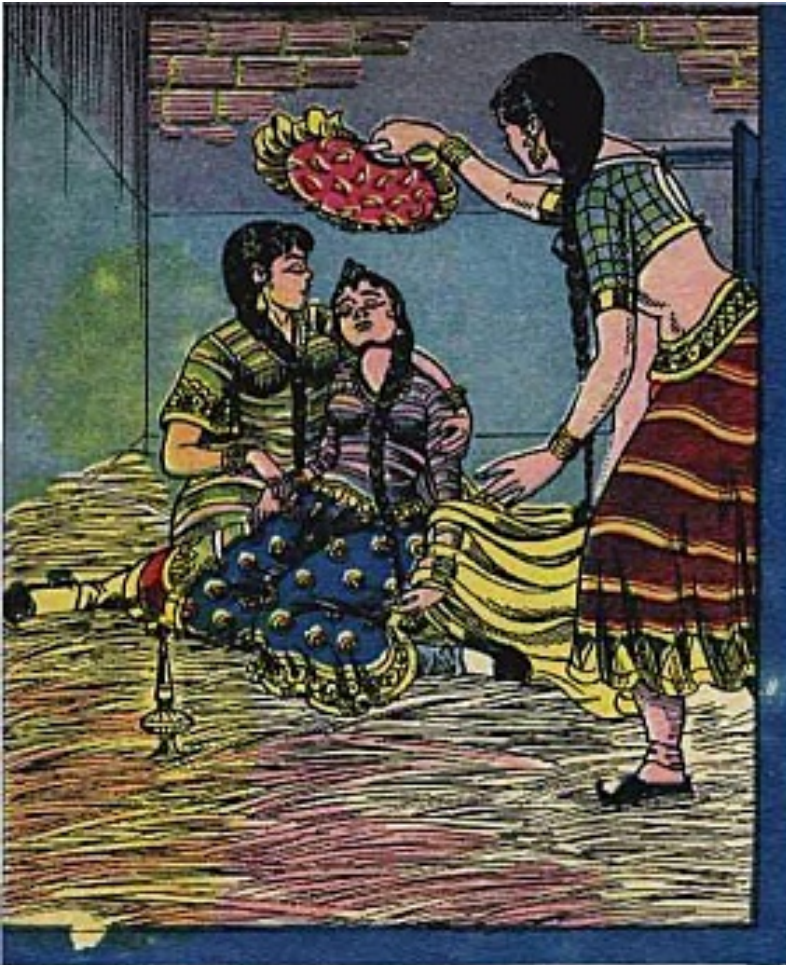
बिना किसी संकोच और झिझक के, अयाशा तिलोत्तमा को अपनी गोद में लेकर बैठ गई। गुलाब जल के छिड़कने पर और पंखे के झलने पर, तिलोत्तमा धीमे धीमे होश में आने लगी। जब उसने आँखें खोलकर देखा कि वह कहाँ थी, वह वहाँ से उठकर जाने के लिए उठी। पर उसके शरीर में उठकर खड़े होने की शक्ति भी न थी।

अयाशा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"क्यों, घबरा रही हो? तुम में शक्ति बिल्कुल नहीं है। मेरे कमरे में आकर आराम करो। ठीक हो जाने पर जहाँ तुम चाहोगी, वह भिजवा दूँगी।"

तिलोत्तमा कोई जवाब न दे सकी। वह चुप रही।

"क्यों, मुझ पर भरोसा नहीं है? मान लो, मैं तुम्हारे शत्रु की लड़की हूँ। पर केवल इस कारण मेरा सन्देह करना अच्छा नहीं है। तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। सवेरा होने से पहिले जहाँ, तुम चाहोगी, वहाँ भिजवा दूँगा।" अयाशा ने कहा।

अयाशा की बातें और उसका बात करने का लहजा सुनकर, तिलोत्तमा के लिए उस पर सन्देह करना सम्भव भी न था। तिलोत्तमा में अब जाने की शक्ति न थी। जगतसिंह के पास रहना भी उसके लिए दूभर हो रहा था। इसलिए

वह अयाशा के कमरे में जाने के लिए मान गई।

"तुम चल नहीं सकती। मेरी दासी तुम्हें पकड़कर मेरे कमरे में ले आयेगी। तुम वहाँ विश्राम लो। मैं अभी आती हूँ।" अयाशा ने तिलोत्तमा से कहा।

तिलोत्तमा दासी के कन्धे पर हाथ रखकर, धीमे-धीमे चलती गई। अयाशा ने जगतसिंह से विदा लेकर आ जाना चाहा, परन्तु उसका मुँह देखकर उसने सोचा कि वह उससे कुछ कहना चाहता था, इसलिए उसने अपनी दासी से कहा—"इन्हें कमरे में पहुँचाकर, फिर मेरे पास आओ।"

तिलोत्तमा जब तक आँखों से ओझल न हो गई, जगतसिंह उसकी ओर ही देखता रहा। फिर उसने सोचा—"तिलोत्तमा यह ही हमारा अन्तिम मिलन है।"

जिस व्यक्ति ने अंगूठी दिखाई थी, वह तिलोत्तमा के जाते समय उसके पास आया और पूछा—"क्या मैं अब जा सकता हूँ?" तिलोत्तमा ने तो कोई जवाब न दिया, पर उसके साथ की दासी ने कहा—"हाँ।" वह उसके पास की अंगूठी लेकर चला गया।

दासी के साथ तिलोत्तमा के जाते ही, अयाशा ने जगतसिंह के पलंग पर बैठते हुए कहा—"युवराज, आप शायद मुझसे कुछ कहना चाहते हैं। इसीलिए मैं यहाँ रह गई हूँ। यदि मैं कुछ कर सकूँ, तो निस्संकोच बताओ। यदि मैं कुछ सेवा कर सकी, तो अवश्य करूँगी।"

"नवाबजादी, अब मुझे किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है। अब शायद मैं अपनी अन्तिम दशा में हूँ। शायद हमारा यह मिलना अन्तिम हो सकता है। मुझ पर आपका इतना आभार है कि

"मुझे निराशा तंग नहीं कर रही है। मैं आशा पिपासी भी नहीं हूँ। मैं इस कैद से छूटना भी नहीं चाहता। इस जन्म में अब मुझे कोई सुख नहीं है। मेरे मन का दुःख आप समझ नहीं सकती और मैं समझा नहीं सकता।" जगतसिंह ने कहा।

उसकी बात सुनकर अयाशा को बड़ा अचरज हुआ। "आपको इतना बड़ा दुःख कैसे हुआ? वीरेन्द्रसिंह की लड़की ने...." वह कहते कहते रुकी।

जगतसिंह ने उसको रोकते हुए कहा—"उसकी बात न उठाइये। वह सपना तो कभी का चला गया है।"

अयाशा ने कुछ देर सिर झुकाकर रखा। फिर कहा—"युवराज, आपका इस प्रकार कैद में, दुःख में कष्ट उठाना, मेरे से नहीं देखा जाता। मेरे साथ आइये। मैं आपको विमुक्त करवा दूँगी। आज रात ही आप अपनी छावनी चले जाइये।"

"अयाशा, क्या तुम अपने पिता को बिना बताये ही मुझे छुड़वा दोगी?" जगतसिंह ने पूछा।

उसे शब्दों में व्यक्त भी नहीं कर सकता। यदि मैं स्वतन्त्र हो गया और फिर मेरे अच्छे दिन आये और यदि आपको कभी मुझसे कोई काम हुआ, तो वह अवश्य करवाइये। यही मेरी प्रार्थना है।" जगतसिंह ने कहा।

उसकी कपटहीन आवाज़ सुनकर, अयाशा की आँखों में आँसू आ गये। उसने, जगतसिंह से कहा—"आप क्यों सोचते हैं कि आपकी इतनी असहाय स्थिति है। निराश होना ठीक नहीं है। आज जो कष्ट हैं, कल वह शायद न हों। सुख दुःख हमेशा नहीं रहते।"

"उस बारे में मत सोचो। तुम्हारे छावनी पहुँचने के बाद, मैं उनसे कह दूँगी।" अयाशा ने कहा।

दोनों एक दूसरे को अनायास, "तुम तुम" कहने लगे थे।

"जब उनको पता लगेगा, तो तुम बड़ी आफ़त में फंस जाओगी।"

"कोई डर नहीं। जो होगा, मैं देख लूँगी।"

"अयाशा, मैं नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?" अयाशा ने आश्चर्य से पूछा।

"तुम मेरे प्राणदाता हो। मैं ऐसा कोई काम नहीं करूँगा, जिससे तुम्हें कष्ट हो।"

"अयाशा चुप रही। उसकी आँखों से आँसू टपाटप गिरने लगे।

उसके बिना जाने ही कोई तीसरा आदमी दरवाज़े के पास आ खड़ा हो गया था। उसने उन दोनों के पास आकर कहा—"शबाश, नवाबजादी खूब, बहुत अच्छा...."

दोनों ने जब उसकी ओर देखा, तो वे पहिचान गये कि वह उस्मानखान ही था। उस्मान ने जो मज़ाक में कहा था, उसे सुनकर, जगतसिंह ने सोचा कि अयाशा पर ज़रूर मुसीबत आयेगी। पर अयाशा ने उसको ठीक ही समझा। परन्तु उसने यह व्यक्त नहीं किया—"क्या खूब, बहुत अच्छा है, उस्मान।"

"आधी रात के समय, नवाब की लड़की का अकेली कैद में आना और कैद में प्रेम की बातें करना, अच्छा नहीं, तो और क्या है?" उस्मान ने कहा।

अयाशा ने उस्मान की ओर घूरते हुए कहा—"कैद में आकर, कैद में प्रेम की बातें करना, या न करना, मेरी मर्जी पर

है। वह बहुत अच्छा है, या नहीं है, इससे तुम्हारा क्या वास्ता ?"

ये बातें सुनकर, उस्मान चकित हो गया। उसको आश्चर्य की अपेक्षा क्रोध ही अधिक हुआ था। "मेरा वास्ता है कि नहीं, कल नवाब के मुख से ही सुन लेना।"

"जब पिताजी पूछेंगे, तब मैं जवाब दे लूँगी। उसके बारे में, तुम्हारे सोचने की ज़रूरत नहीं है।" अयाशा ने, ज़ोर से गुस्से में कहा।

"अगर यह बात मैं पूछूँ तो...." उस्मान ने कहा।

अयाशा और सीधी खड़ी हो गई। उसने उसके मुँह पर घूरकर देखा। फिर स्पष्ट स्वर में कहा—"यदि तुमने पूछा, तो उत्तर होगा कि यह कैदी मेरा प्राणेश्वर है—उस्मान...."

यह सुनते ही उस्मान और जगतसिंह को लगा, जैसे उन पर गाज गिर पड़ी हो। युवराज की आँखों के सामने कोहरा-सा छा गया। अयाशा के दुःख का कारण वह समझ गया।

अयाशा ने उसकी ओर मुड़कर कहा—"युवराज, मुझे माफ करो। यदि उस्मान, इस तरह न पूछता, तो मैं अपने मन की बात व्यक्त न करती और यह तुम्हें कभी मालूम भी न होता।"

जगतसिंह चुप खड़ा रहा। उसका हृदय दुःख के कारण जला-सा जा रहा था। अयाशा वहाँ एक क्षण भी न खड़ी रही। दासी के आने की भी प्रतीक्षा न की। वह अकेली ही चल पड़ी। उस्मान थोड़ी देर चकित खड़ा रहा। फिर इतमीनान से अपने घर की ओर चल दिया। [अभी है]

घमंड़ी पत्नी

विक्रमार्क ने हठ न छोड़ा। वह फिर पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव उतारकर, हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, तुम में कितना ही गर्व होना चाहिए था, पर तुम जैसे को, इतनी निष्ठा से यह निकृष्ट काम करता देख, मुझे कन्यकुब्ज का कौन्डिन्य याद आ रहा है। उसकी विचित्र कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यूँ कहानी सुनानी शुरु की।

कन्यकुब्ज नगर में कौन्डिन्य नाम का एक युवक रहा करता था। वह धनी था। उसने समन्त नाम की मुनि की लड़की से विवाह किया। समन्त भी सम्पन्न था। इस तरह कौन्डिन्य की पत्नी, माईके की सम्पन्न थी और ससुराल की भी और वह इस कारण बड़ी घमड़ी हो गई थी।

वेताल कथाएँ
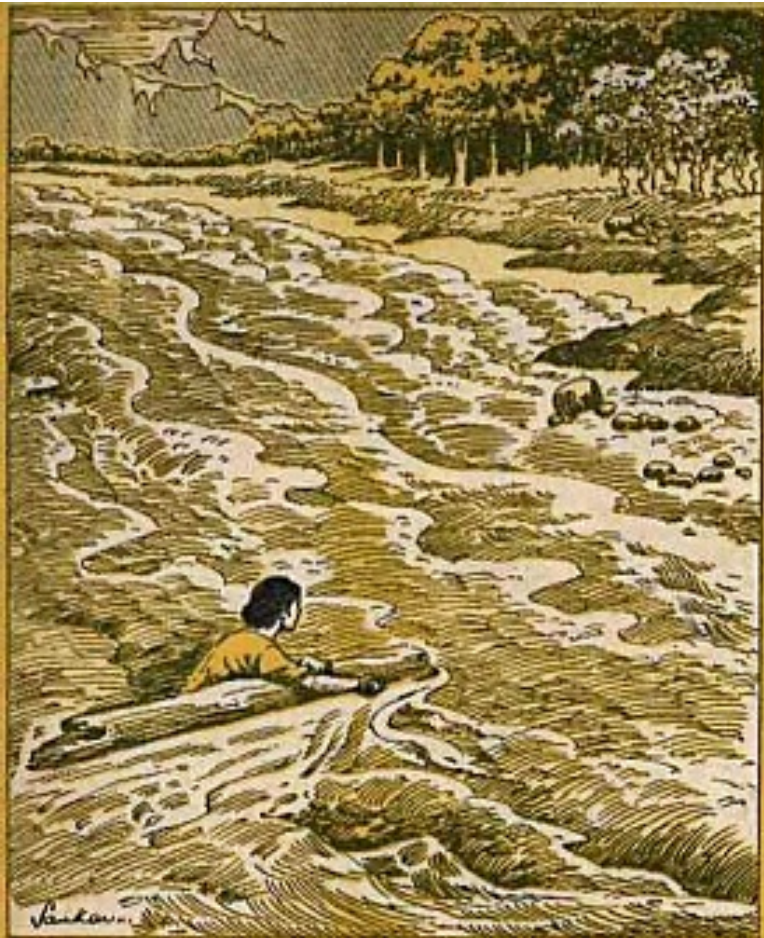
कुछ दिन बाद कौन्डिन्य का पिता मर गया। उसकी माँ भी, अपने पति के साथ सति हो गई। कौन्डिन्य माँ बाप की अन्तिम क्रियायें करके, दो मास बाद, किसी काम पर राजधानी गया। वहाँ उसे सुन्दर वेश्यायें दिखाई दीं। वह एक पर मुग्ध हो गया। जब तक उसका धन खतम न हो गया, उसने मज़े में उनके साथ समय बिताया। फिर घर गया।

पत्नी तो पहिले ही घमंड़ी थी, पति के किये काम को देख, वह उस पर और खिझी, कौन्डिन्य ने कोई व्यापार करने के लिए, अपनी पत्नी से उसके गहने माँगे। उसने गहने तो दिये नहीं, उसका अपमान करके, अपने माइके चली गई।

कौन्डिन्य हताश हो गया, घर बार छोड़ कर, वह एक जहाज़ पर सवार हो गया, जो उस समय किसी व्यापार पर, समुद्र में जा रहा था। समुद्र में वह जहाज़ डूब गया और सिवाय कौन्डिन्य के सब डूब गये।

कौन्डिन्य को सौभाग्यवश एक शहतीर मिल गया। वह जैसे तैसे, उसके सहारे तैरते तैरते एक पहाड़ के पास आ लगा। उसे बड़ी भूख लग रही थी। उस पहाड़ पर अंगूर के पौधे थे। उसने अंगूर खाकर, अपनी भूख मिटाई। फिर वह एक पेड़ के नीचे अपना अंगोछा बिछाकर सो गया। थोड़ी देर में अन्धेरा हो गया।

उस दिन रात को उस पहाड़ पर एक विचित्र बात हुई।

काशी राजा की रत्नावली नाम की लड़की थी, वह बड़ी सुन्दर थी। उस रात को बिना पैर धोये, उत्तर की ओर सिर रखकर, वह सो गई। यह मौका देख, एक राक्षस उस राजकुमारी को उठा लाया

और उस पहाड़ पर पहुँचा, जिस पर कौन्डिन्य था और वह उसे एक सुन्दर गुफा में ले गया। उस गुफा में सब तरह की चीज़ें रखी थीं।

राक्षस ने रत्नावली को गुफा में उतारते ही, राक्षस की पत्नी कहीं से आयी और रोती हुई राजकुमारी को देखकर उसने पूछा—"यह कौन है? क्यों इसे लाये हो?" उसे डाँटा फटकारा।

"तुम्हारे खाने के लिए लाया हूँ। इसी पहाड़ पर एक पेड़ के नीचे, एक ब्राह्मण लड़का सोया हुआ है। मैं उसे खाऊँगा। जाओ, उसे पकड़कर लाओ।" राक्षस ने अपनी पत्नी से कहा।

तुरत रत्नावली ने राक्षसी से कहा—"अरे राक्षसी, तेरा पति सरासर झूट बोल रहा है। तुम बूढ़ी हो गयी हो, इसलिए मुझ जवान का ले आया है।"

राक्षस की पत्नी ने ईर्ष्या से कहा—"अच्छा, तो मैं तेरे लिये पेड़ के नीचे सो रहे ब्राह्मण को लाऊँगी।" यह कहकर वह कौन्डिन्य के पास गयी। उससे मीठी मीठी बातें कहकर, उसने कहा—"मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया है। उसके पास शक्ति नाम का हथियार है। उसे लाकर तुम्हें दूँगी। उससे अगर तुमने मेरे पति को मार दिया, तो ज़िन्दगी-भर तेरी दासी होकर, तेरी सेवा करूँगी।"

"तुम राक्षसी हो। तुम मुझ जैसे को खा सकती हो। कैसे तेरी बात का विश्वास किया जाय?" कौन्डिन्य ने पूछा।

"कोई पाप करके ही तो मैंने और मेरे पति ने यह राक्षस जन्म लिया है। यदि इस राक्षस जन्म से छुटकारा मिल गया, तो वह सुधरेगा। क्योंकि मैंने तेरी प्राण रक्षा की है इसलिए

अब तक उसको तुम्हारी पत्नी ने खा न लिया हो, तो साथ ले आओ। जब वह पुरोहिताई करके, हम दोनों का विवाह कर दे, तब चाहे, तुम उसे खा जाना।"

मूर्ख राक्षस को यह सलाह बड़ी जँची। इसलिए वह गुफा से निकलकर, पेड़ के नीचे कौन्डिन्य के पास गया। वह अभी कुछ दूर था कि राक्षसी ने कौन्डिन्य से कहा—"वह जो आ रहा है, वह मेरा पति ही है। तुम्हें खाने आ रहा है। शक्ति से यदि तुमने उसे मारा, तो वह एक चोट में ही खतम हो जायेगा।"

मुझे भी अच्छा जन्म मिलेगा।" राक्षसी ने कहा।

"तो....तुम उस शक्ति को ले आओ।" कौन्डिन्य ने कहा। राक्षसी ने जाकर, वह शक्ति लाकर उसे दी।

इस बीच राक्षस ने राजकुमारी पर बलत्कार करना चाहा। वह उससे बच भी नहीं सकती थी। इसलिए उसने उससे कहा—"यदि तुम मेरे साथ रहना चाहते हो, तो कम से कम मुझसे विधिपूर्वक विवाह कर लो। पेड़ के नीचे तुमने कहा था न कि एक ब्राह्मण युवक है, अगर

राक्षस को उसके पास आने दिया। फिर कौन्डिन्य ने शक्ति का उपयोग करके, राक्षस को मार दिया। जहाँ वह राक्षस मरा था, वह शक्ति क्षेत्र के नाम से जाना जाने लगा।

उस राक्षसी ने कौन्डिन्य से कहा—"मैं पहिले जन्म में, कौर्वड़ नाम के मुनि की लड़की थी, मेरा नाम कन्दली था। मेरे पिता ने दुर्वासा से मेरा विवाह किया। मैं हमेशा अपने पति से लड़ती झगड़ती। यह देख मेरे पति ने मुझे शाप दिया कि मैं राख हो जाऊँ। परन्तु मेरा पाप पूरी तरह

नष्ट न हुआ, इसलिए मैंने राक्षस जन्म लिया। परन्तु चूँकि मैं शाप के कारण राक्षसी बनी थी, मेरी बुद्धि पूरी तरह राक्षसों की नहीं है। इसीलिए मैंने तेरी सहायता करके पुण्य पा लिया है। मेरा पति काशी के राजा सद्युम्न की लड़की रत्नावली को उठा ले आया है। वह अभी पहाड़ पर ही है। तुम उससे विवाह करो। तुम दोनों को मैं क्षण-भर में काशी पहुँचा दूँगी। मैं, तुम दोनों को पास ही रहूँगी।"

कौन्डिन्य इसके लिए मान गया। राक्षसी ने हाथी का रूप धरा। पलक मारते ही कौन्डिन्य और रत्नावली को अपनी पीठ पर सवार करके, वह काशी में विश्वेश्वरालय के पास पहुँची। उसकी सलाह पर कौन्डिन्य, रत्नावली को राजा के पास ले गया। रत्नावली ने अपने पिता से, जो कुछ गुज़रा था, कह सुनाया। फिर बताया—"इस युवक ने मेरी रक्षा की है। इसके साथ ही मैं हाथी पर सवार थी। इन दोनों कारणों से, वह मेरा पति होने योग्य है।"

काशी राजा ने सन्तोषपूर्वक अपनी लड़की का कौन्डिन्य के साथ विवाह किया, उसे अनन्त रत्न दिये।
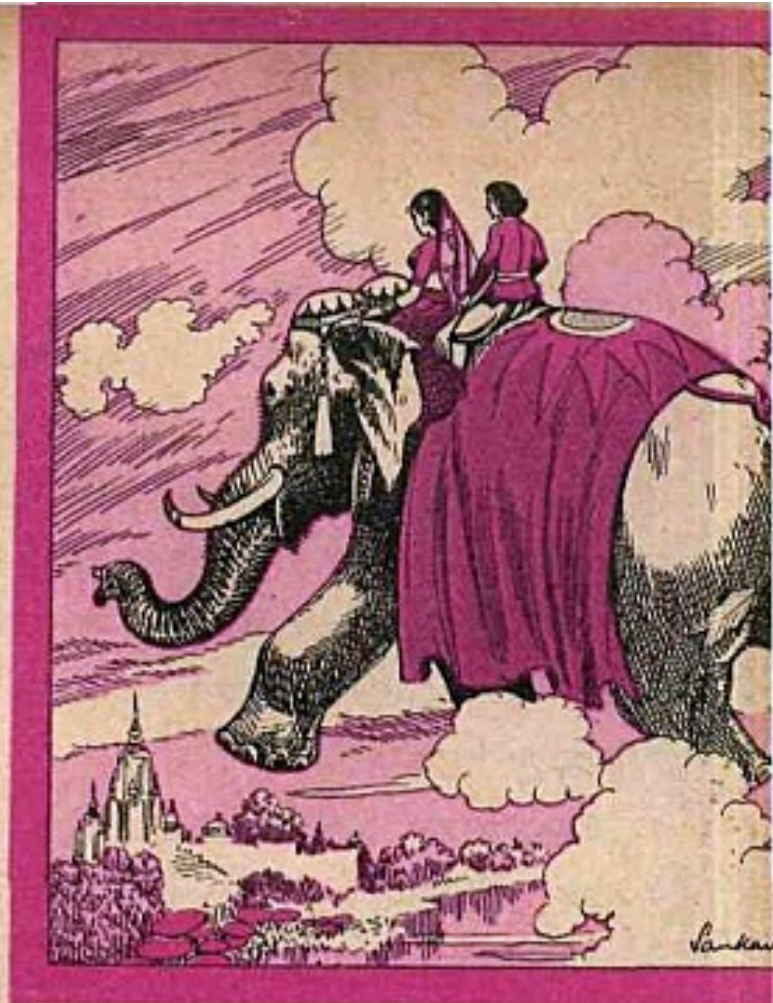
यह होने के बाद, कौन्डिन्य की पहिली पत्नी को तरह तरह से चिढ़ाया गया—"अब देखो, तुम्हारे पति के कितने अच्छे दिन आये हैं। उसे तुमने क्या नहीं कहा? अब तुम क्या मुँह लेकर उसके पास जाओगी? अगर जाओगी भी तो क्या वह तुम्हें आने देगा? तुम्हें बुरी तरह देखेगा।" वह भी बड़ी पछताई कि क्यों उसने इतने घमंड के साथ, उसके साथ व्यवहार किया था। "उन्होंने जब गहने माँगे थे मैंने क्यों नहीं दे दिये थे...." उसने अपने को कोसा।

उसी समय उसने अपनी पहिली पत्नी के लिए पालकी भेजी। यह देख सबको आश्चर्य हुआ। वह उस पर सवार होने के लिए लजाई, पर पालकीवालों के मनाने पर, वह पालकी में सवार होकर, पति के पास गई। कौन्डिन्य ने अपनी बड़ी पत्नी को बड़े आदर के साथ स्वीकार किया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा—"राजा, मुझे एक सन्देह है। क्यों कौन्डिन्य ने उस पत्नी को, जिसने उसकी बुरी हालत में, गहने तक देने से इनकार कर दिया था, हालत सुधरने पर पास बुलाया था? क्या इसलिए कि उसको उस पर सचमुच प्रेम था या कृतज्ञतावश? उसके अपमान करने के कारण, वह समुद्र यात्रा पर गया था और समुद्र में जहाज़ का डूब जाना और अन्त में इस कारण, चूँकि वह एक राजकुमारी से विवाह का पाया था? यदि तुमने इन सन्देहों का जानबूझकर उत्तर न दिया, तो तुम्हारे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा—"कौन्डिन्य को अपनी पत्नी पर कोई विशेष प्रेम न था। न गुस्सा ही था। न कृतज्ञता ही थी। जिसको अपने ऐश्वर्य पर अभिमान था, वह अपने पति के अधिक ऐश्वर्य को देखकर, विनम्र होकर ही रहेगी। घमंड़ी पत्नी का घमंड़ तोड़ने के लिए ही कौन्डिन्य ने अपनी पहिली पत्नी को अपने पास बुलाया था।"

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और फिर पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)
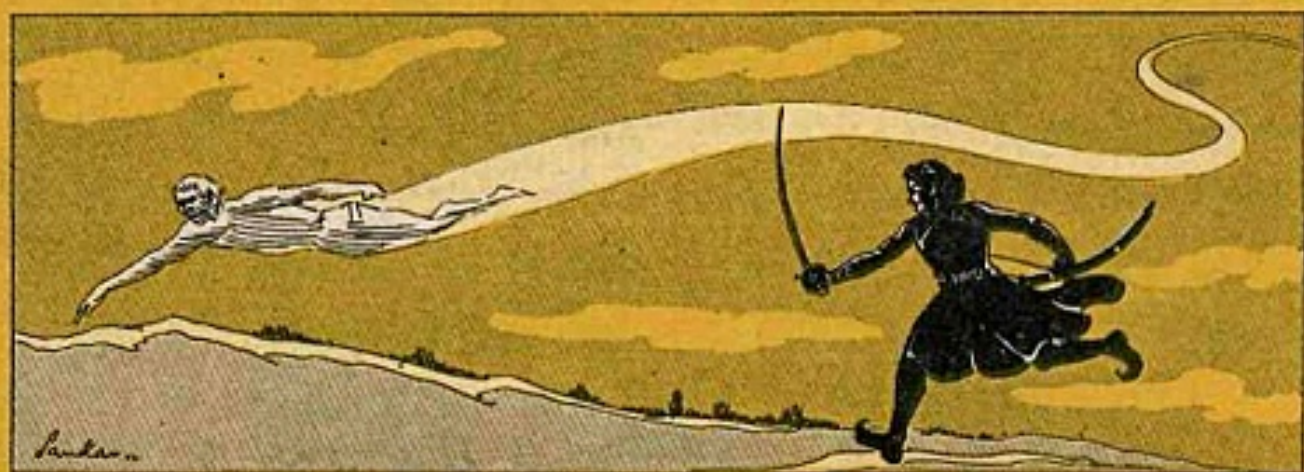
सुरतमंजरी की कथा

उज्जयिनी नगर के राजा चण्ड महासेन के बाद, उसका लड़का गोपालक राजा हुआ। उसकी पत्नी का नाम अवन्तीमति था। उसके अवन्तीवर्धन के नाम का लड़का था।

एक दिन जब उज्जयिनी नगरवासी, जलोत्सव में मग्न थे तो एक मस्त हाथी खुल गया, सारे शहर में गड़बड़ी करने लगा। इससे पहिले कि महावत उसे वश में कर सकें, रास्ते में जो आता वह उसे मारता, वह हरिजनवाड़े की ओर झूमता झूमता भाग रहा था।

उसी समय हरिजनवाड़े से, एक अद्भुत सुन्दरी उसके सामने आयी। उसको देखते ही हाथी इस तरह रुका, जैसे उस पर किसी ने जादू कर दिया हो, उसने उसके सूँड को सहाला। उसके दान्तों से अपना आँचल बाँधकर, उसने झूला-सा बना लिया और उस झूले में बैठकर, वह झूलने लगी। वह जहाँ थी, वहाँ धूप थी, इसलिए हाथी उसको छाह में ले गया।

नगरवासी यह सब देख चकित थे। हर किसी के मुँह से, इसी के बारे में बातें निकल रही थीं। इस हरिजन लड़की ने कैसे एक मस्त हाथी को, यूँ वश में कर लिया था? उसमें उस सौन्दर्य के साथ इतना प्रभाव भी है।

कानों कान यह बात राजकुमार अवन्तीवर्धन के पास पहुँची। उसने उस लड़की को और उसके वश में किये हुए हाथी को स्वयं देखना चाहा और वह आकर, उसके सौन्दर्य पाश में ही फंस गया।

उसे देखकर, उस लड़की को भी उस पर प्रेम हो गया। तुरत झूले से उतरी, हाथी के दान्तों से, अपना कपड़ा निकाला। उसे कन्धे पर डाल, अपने घर चली गई। महावत हाथी को उस पर सवार होकर ले गया।

अवन्तीवर्धन अपनी बुद्धि और हृदय उस हरिजन लड़की को सौंपकर, घर चला आया।

वह जल्दानोत्सव में भी न गया। उसने अपने मित्रों से पूछा—"वह लड़की कौन है? उसका नाम क्या है?"

"हरिजनवाड़े में वीरबाहु नाम का एक हरिजन है। वह उसकी लड़की है। उसका नाम सुरतमंजरी है। उसे एक खिलौने की तरह देखकर, आनन्दित होने में ही श्रेय है, विवाह करके, पत्नी बनाने में श्रेय नहीं है।" अवन्तीवर्धन के मित्रों ने कहा।

"झूट, वह हरिजन स्त्री बिल्कुल नहीं है। कोई देवता स्त्री है। हरिजन कन्या में कैसे इतना सौन्दर्य सम्भव है? यदि वह मेरी पत्नी न हुई, तो मैं निश्चय ही जीवित न रहूँगा।" अवन्तीवर्धन ने कहा।
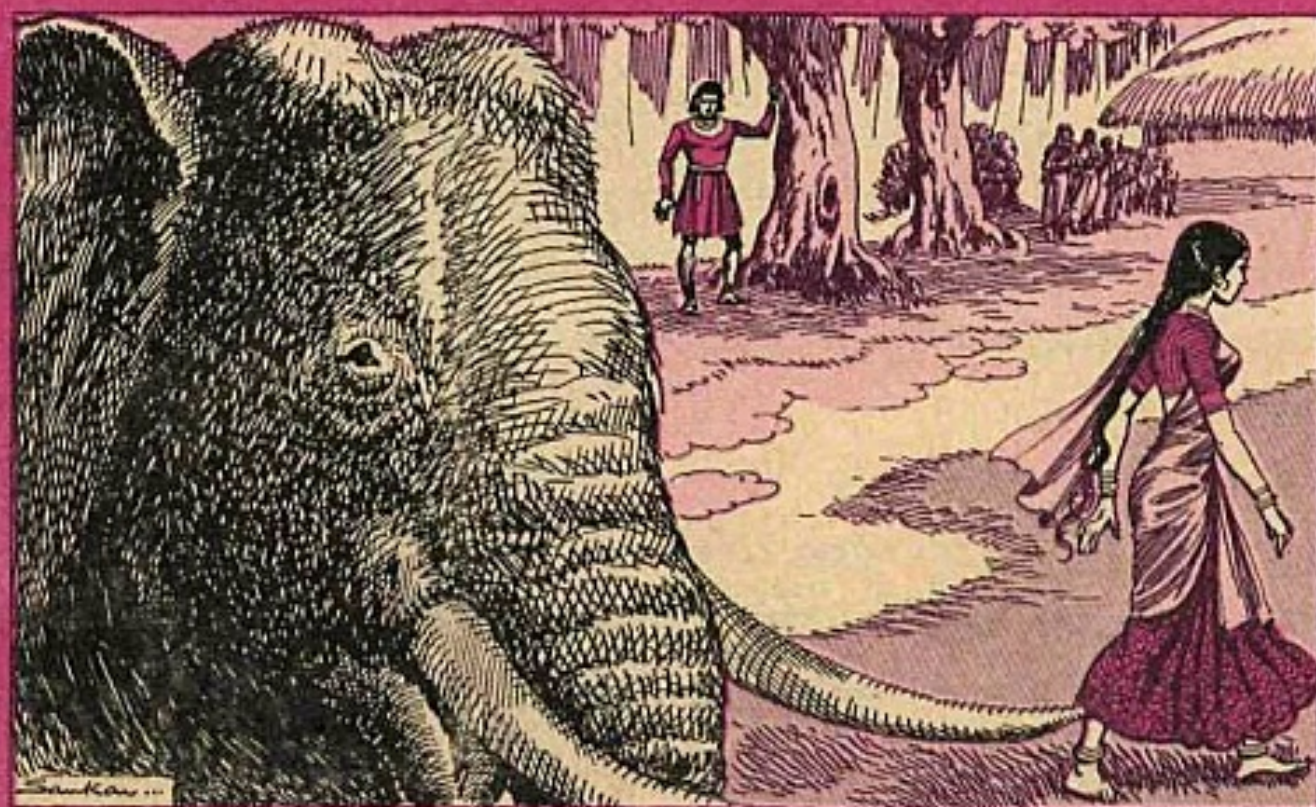
उसका निश्चय बदलने के लिए मित्रों ने बड़ा प्रयत्न किया। पर वे सफल न न हुए। उसकी हालत देखकर, उसके पिता बड़ा चिन्तित हुआ।

"मेरे लड़के को हीन हरिजन की स्त्री को प्रेम करता देख, मुझे आश्चर्य होता है।" अवन्तीमति देवी ने कहा। "शायद इसका कारण यह है कि वह स्त्री सचमुच हरिजन नहीं है। किसी कारणवश यह हो गई है। शायद पूर्वजन्म का सम्बन्ध भी कारण हो सकता है।" मन्त्रियों ने कहा। कुछ की सलाह थी कि राजकुमार के सुख का ख्याल करते हुए, सुरतमंजरी के साथ उसका तुरत विवाह कर देना ही ठीक है।

इस सलाह के अनुसार, गोपालक महाराजा ने वीरबाहु के पास अपने दूत भेजे। "तुम अपनी लड़की का राजकुमार के साथ विवाह करो।"

वीरबाहु ने राजा के सन्देश सुनकर, दूतों से कहा—"मुझे अपनी लड़की का, राजकुमार के साथ विवाह करना स्वीकार है। पर राजा को एक नियम मानना होगा। वह यह कि राजा को मेरे घर,

अट्ठारह हज़ार ब्राह्मणों को और नगरवासियों को सहभोज देना होगा। ऐसा करने पर मेरी लड़की सुरतमंजरी, उनकी बहू हो जायेगी।"

दूतों ने जाकर, गोपालक महाराजा से, जो वीरबाहु ने शर्त रखी थी, वह डरते डरते सुनाई।

गोपालक न जान सका कि इस शर्त का क्या मतलब था। इसका ज़रूर कोई कारण होगा। यह सोचकर, उसने ब्राह्मणों को बुलवाया—"तुम अट्ठारह हज़ार ब्राह्मणों को वीरबाहु नाम के हरिजन के घर भोजन करना होगा। यह मेरी आज्ञा है, यदि तुमने यह न किया, तो तुम पर आपत्ति आ सकती है।"

ब्राह्मण दुविधा में पड़ गये। राजा की आज्ञा का उलंघन करते हैं, तो दण्ड मिलता है। राजा की आज्ञा मानते हैं, तो हरिजन के यहाँ भोजन करना होता है, आखिर, दण्ड के भय की ही जीत हुई।

उन्होंने गोपालक महाराजा से कहा—"महाराज, यदि वीरबाहु ने शुद्धतापूर्वक सन्तर्पण, सहभोज दिया, तो हम उसके यहाँ खाना खायेंगे। परन्तु हरिजनवाड़े में नहीं।"

राजा ने वीरबाहु के लिए अलग एक बड़ा महल बनवाया। उसमें अट्ठारह हज़ार ब्राह्मणों को खिलाने की व्यवस्था की गई। ब्राह्मण जब भोजन कर रहे थे, तो वीरबाहु स्नान करके, उनके सामने आ बैठा।

फिर गोपालक महाराज, वीरबाहु की लड़की सुरतमंजरी से, अपने घर ले गया और उसका अपने लड़के अवन्तीवर्धन के साथ वैभवपूर्वक विवाह किया।
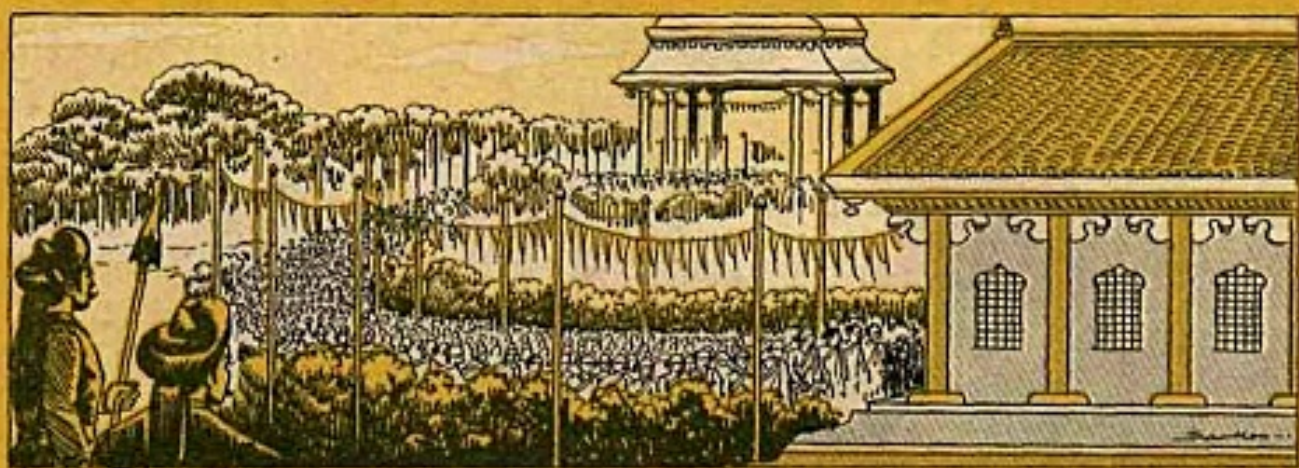
रथोत्सव

पन्नालाल जिस ग्राम में रहता था, वहाँ हर वर्ष शिवरात्री के दिन रथोत्सव होता था। इसमें गाँव के लोग ही हिस्सा न लेते थे, बल्कि आस पास के लोग भी आया करते थे। उत्सव के कार्यों में पन्नालाल भी भाग लिया करता था। पर इस वर्ष मन्दिर के अधिकारियों ने पन्नालाल को किसी काम के लिए नहीं बुलाया।

उस गाँव में भण्डूमल नाम का एक खराब आदमी था। वह किसी नियम वियम का पालन नहीं करता, निषिद्ध काम करता, बन्धुओं से भी दूर हो गया था। गाँव में उससे बहुत लोग डरते थे। लोग उसे पापी भण्डूमल कहा करते थे। जब वह दुनियाँ से अलग था, तो उसे इधर उधर के काम करके ही जीना पड़ता था, लोगों ने सोचा, कि भगवान ने भी उसका बहिष्कार कर रखा था। क्योंकि, जो कोई उसके सन्तान होती, एक साल भी न जीती।

भण्डूमल अब साठ वर्ष का था। जब सब शक्तियाँ क्षीण हो गईं, तो उसने सोचा कि सिवाय भगवान के उसका कोई और न था। वह मन्दिर गया। हाथ जोड़कर, प्रार्थना कर रहा था कि गाँववालों ने देखकर कहा—"चोर कहीं का, अब फिर मन्दिर के माल पर इसकी आँख है।" उसे खूब पीटा।

भण्डूमल की भक्ति पर गाँववालों को भला क्यों विश्वास होता? पहिले भी उसने भक्ति का ढ़ोंग रचकर, मन्दिर का समान चुरा लिया था। चोट खाकर, भण्डूमल जब गली में पडा पड़ा कराह

यह पन्नालाल को बड़ा बुरा लगा। उसने मन्दिर के अधिकारियों से पूछकर मालूम कर लिया कि उसने क्या गलती की थी—"यदि मैंने गलती ही की है, तो प्रायश्चित्त बताइये। परन्तु मुझे भगवान के कार्य से मत हटाइये।" उसने कहा।

बड़ों ने कहा यदि अपराध के लिए थोड़ा बहुत धन दे दिया जाये, तो प्रायश्चित्त हो जायेगा। पन्नालाल ने यह प्रायश्चित्त करके, रथ की रस्सी को पकड़ने की योग्यता प्राप्त की।

शिवरात्री के दिन मन्दिर से रथ निकला। रास्ते में, गली, पानी डालकर, साफ कर दी गई थी, जगह जगह तोरण बाँधे गये थे। रथ अभी थोड़ी दूर गया था कि "ठहरो, ठहरो" की आवाज सुनाई पड़ने लगी। रथ रुक गया।

हुआ यह था कि रथ अभी कुछ दूर ही था, कि एक बूढ़ा गली के बीचों बीच आया। भक्ति के आवेश में भगवान को देखता देखता, स्तम्भ की तरह खड़ा हो गया और जब रथ पास आया, तो वह साष्टान्ग गिर गया। जब तक वह गिर न गया, उस आदमी को किसी ने न

रहा था—"हे भगवान, अब तुम ही मेरे सब कुछ हो।" तो वह पन्नालाल को दिखाई दिया। पन्नालाल ने भण्डूमल को उठाया। उसको, घर पहुँचाया। कुछ रुपया देकर कहा—"अगर कभी मदद की ज़रूरत हो, तो मुझ से कहना।"

उस भण्डूमल की, जिसे सारा गाँव दुष्ट समझता था, पन्नालाल का मदद करना, बड़े बुज़ुर्गों को जंचा नहीं। इसलिए मन्दिर के अधिकारियों ने निश्चय किया, कि उसे रथोत्सव कार्यक्रम में भाग न लेने दिया जाये।

देखा, और जब वह गिर गया, तो सब एक साथ जोर से चिल्लाये।

गिरे हुए आदमी को छूने के लिए, एक तरफ़ उठाकर ले जाने के लिए, रथ के लिए रास्ता बनाने के लिए कोई आगे नहीं आया। परन्तु पन्नालाल ने यह सुनते ही कि कोई गिर गया था रथ की रस्सी छोड़कर सामने आकर गिरे हुए बूढ़े को उठाने का प्रयत्न किया। परन्तु पन्नालाल ने एक शव को ही उठाया और वह शव था, भण्डूमल का।

यह जानते ही कि रथ के नीचे भण्डूमल गिर गया था, रथोत्सव के कर्मचारियों ने कहा—"अरे यह पापी यहाँ भी आ मरा। इसके शव को ले जाकर दूर फेंक दो और जहाँ वह गिरा था, उस जगह को पवित्र कर दो।"

"सब पुण्य कार्य में लगे हुए हैं। मैं शव को छूकर वैसे भी अपवित्र हो गया हूँ। मैं भण्डूमल के शव को उसके घर पहुँचा दूँगा। आप इस बीच इस भूमि को पवित्र करने के लिए जो कुछ करना है, कीजिए। रथ के हिलने से पूर्व, मैं भी स्नान करके आता हूँ।" पन्नालाल ने कहा।

मन्दिर के कर्मचारियों ने यह सुनकर कहा—"पन्नालाल! जो अब तक तुमने किया है, वह काफी है। चूँकि तुम्हें रथ की रस्सी पकड़ने दी थी, इसलिए ही यह हुआ है। इस बार चाहे तुम कैसा भी प्रायश्चित्त करो, हम तुम्हें भगवान का कार्य नहीं करने देंगे। तुम अपने काम पर जाओ और हम अपना काम करते हैं।"

पन्नालाल को बड़ा रंज हुआ। लम्बी साँस खींचकर, वह भण्डूमल के शव को कन्धे पर डाल उसके घर गया। भण्डूमल की पत्नी ने पति के शव को देखकर कहा—"विचारा, भगवान में मिल गया।"

उसने पन्नालाल से एक विचित्र बात कही। भण्डूमल ने पिछले साल मनौती की थी कि अगर उसकी आखिरी सन्तान एक साल से अधिक जीवित रही, तो रथ के नीचे गिरकर वह बलि हो जायेगा। वह सन्तान एक साल से अधिक जियी। भण्डूमल ने अपनी मनौती के बारे में अपनी पत्नी से कहा।

"यह भी क्या मनौती है? रथ के नीचे गिरकर क्या सारा उत्सव खराब करोगे? क्यों ऐसी मनौती की है?" पत्नी ने उसको फटकारा था।

"सच है, पर मुझे वह बात सूझी नहीं। मैं भगवान से कह दूँगा कि मैंने अनजाने मनौती की है।" यह पत्नी से कहकर भण्डूमल रथोत्सव के स्थल पर गया और उसका शव वापिस घर आया।

"मेरा पति, अपना जीवन भगवान को अर्पित कर देना चाहता था? और उसने अर्पित कर दिया। कौन उसे रोक सकता था?" भण्डूमल की पत्नी ने कहा।

"मैं भण्डूमल के बारे में सच जानता हूँ। दुनियाँ उसके बारे में गलत ही सोचती रही। चाहे कोई कुछ सोचे, सच सोचनेवाले भगवान हैं न? भण्डूमल का दहन-संस्कार मैं करवाऊँगा।" पन्नालाल ने उसकी पत्नी से कहा। वह रथोत्सव के बारे में ही भूल गया और वह उस संस्कार के काम में लग गया।

इस बीच रथ जहाँ रुक गया था, वहाँ ब्राह्मणों ने बहुत कुछ हँगामा किया। भण्डूमल जहाँ गिर गया था, उस जगह को मन्त्र पढ़कर शुद्ध किया और फिर रथ को चलने दिया।

"हर हरा" कहते कहते भक्त रथ खींचने लगे। परन्तु न मालूम क्या कारण था, कि रथ एक अंगुल भी न हिला और ऐसा लगा, जैसे वह भूमि पर चिपक गया हो।

एक घंटा हुआ। दो घंटे हुए। पर रथ न हिला।

"भगवान क्रुद्ध हो गये हैं। क्यों न क्रुद्ध होंगे? हमने उस पन्नालाल को रस्सी पकड़ने दी और वह पापी रथ के सामने आकर उसके नीचे मर गया। हर तरह से उत्सव अपवित्र हो गया।"
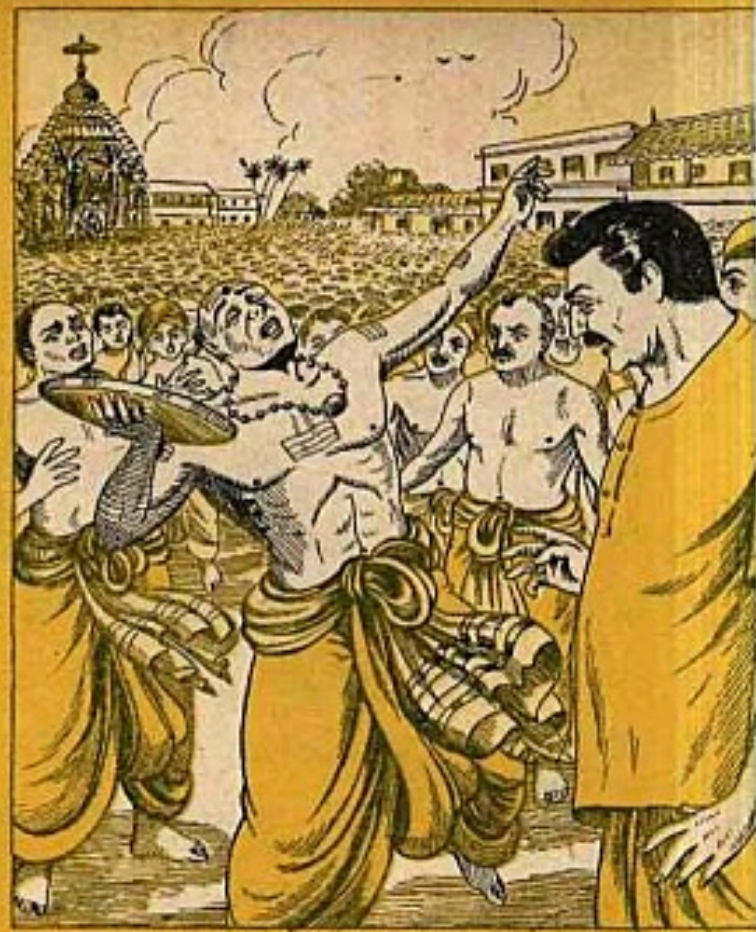
इतने में रथ के सामने आरती की परात लिए बैठा पुजारी मूर्छित हो गया। हर कोई इस प्रतीक्षा में था कि उसके मुँह से भगवान की बात निकलेगी, पुजारी के चारों ओर लोग जमा हो गये।

"उस पन्नालाल को बुलाकर लाओ, जब तक वह रस्सी नहीं पकड़ता, तब तक यह रथ नहीं हिलेगा।" पुजारी ने उस अवस्था में कहा।

बड़े बुजुर्ग मुँह खोलकर एक दूसरे को देखने लगे।

"पन्नालाल को बुलाकर लाओ, तुरत लाओ।" पुजारी चिल्ला रहा था।

बड़े लोग सब मिलकर पन्नालाल के घर गये। पन्नालाल की पत्नी ने बताया कि वह रथोत्सव के पास ही था। वे भण्डूमल के घर गये। उसकी पत्नी ने आँसू बहाते हुए कहा—"पन्नालाल श्मशान में हैं। मेरे पति का दहन-संस्कार कर रहे हैं।"

वे श्मशान गये। पन्नालाल चिता के पास खड़े होकर, किसी ध्यान में था।

"पन्नालाल, हमसे अपराध हो गया है। तुम आकर रस्सी पकड़ो, तभी रथ आज हिलेगा।" मन्दिर के कर्मचारियों ने कहा।

पन्नालाल यह न जानता था कि रथ नहीं हिल रहा था। पर यह सोचकर कि उनकी सम्मति उसके बारे में बदल गई थी, उसने कहा—"अभी तो मैंने स्नान नहीं किया है। प्रायश्चित्त नहीं किया है। इस बार मुझे छोड़ दीजिये। यदि भगवान की कृपा रही, तो अगले साल रथोत्सव में जो कुछ सेवा मुझ से हो सकेगी, मैं करूँगा।"

बड़ों ने उसे रथ और पुजारी के बारे में बताया और उसे मनाया कि जैसा भी वह था, वह आये।

पन्नालाल भी, क्या हालत थी जान गया। उसे अचरज हुआ। उसने भण्डूमल की चिता की परिक्रमा की और जो उसको लिवा लेने आये थे, उनके साथ चल दिया।

भण्डूमल जहाँ गिरा था, वहीं रथ तब भी खड़ा था। पन्नालाल ने उन अशुद्ध वस्त्रों को पहिनकर ज्योंहि रथ का रस्सा पकड़ा त्योंहि वह चल दिया।

चतुर

जोनपुर नाम के गाँव में सत्यवती नाम की एक स्त्री रहा करती थी। वह बड़ी अक़्लमन्द, चुस्त और साहसी थी। यद्यपि उसका पति मर गया था, तो भी वह अपने छोटे लड़के को पालती पोसती, अपनी थोड़ी बहुत जमीन, घरबार स्वयं ही देखती आ रही थी।

एक बार सत्यवती ने एक गौ खरीदकर दूध बेचने की सोची, उसे पता लगा कि रसौली गाँव में, कम दाम पर, अच्छी गौ मिलती थी। सत्यवती सौ मुहरें गाँठ में बाँधकर, अपने लड़के को साथ लेकर रसौली की ओर निकली।

जब वे निकले तो रास्ते में खाने के लिए उन्होंने कुछ न लिया। यदि कोई गाँव मिलेगा, तो वहीं खाने पीने का इन्तजाम कर लेंगे, उन्होंने सोचा। परन्तु रास्ते में एक दो जगह, दो चार झोंपड़ियाँ तो दिखाई दीं परन्तु कहीं कोई गाँव नहीं दिखाई दिया। माँ बेटे बहुत थक थका गये थे। इसलिए बड़े भूखे थे। उन्हें एक जगह पीने के लिए पानी तो मिल गया, पर खाने को कुछ न मिला।

इतने में रास्ते में उनको एक आदमी दिखाई दिया। उसके सिर पर केलों का गुच्छा था। सत्यवती ने उस आदमी को रोककर, केलों के लिए भाव ताव किया। वह बड़ा लालची था। वह जान गया कि माँ बेटे बड़े भूखे थे और पैसे ऐंठने का यही अच्छा मौका था। उसने कहा कि चार चार आने में वह एक एक केला देगा।

सुमति

केलेवाले ने लड़के के हाथ में दो केले रखे। उसमें से लड़के ने एक खाया, जोर से चिल्लाया, फिर वह नीचे गिरकर छटपटाने लगा।

"अरे दुष्ट कहीं के, मेरे लड़के को विष देकर क्यों मारा है?" सत्यवती जोर से चिल्लाती गालियाँ देती, रोने लगी।

उसका चिल्लाना सुन, उसकी ओर आते हुए दो चार राहगीर, लाठियाँ लेकर उसकी ओर भागे। यह देख केलेवाला पेड़ के नीचे केले छोड़, नौ दो ग्यारह हो गया।

उसका लालच देख, सत्यवती बड़ी झुंझलायी। अपने लड़के को लेकर, आगे बढ़ते हुए, उसने कहा—"हमें नहीं चाहिए, तुम्हारे केले।"

केलेवाले ने सोचा कि दो चार तो ये खरीदेंगे ही। इसलिए वह केले लेकर एक पेड़ के पास जाकर उसकी छाया में बैठ गया।

थोड़ी दूर जाने के बाद, सत्यवती ने अपने लड़के के कान में कुछ कहा। फिर दोनों पीछे मुड़े।

"लड़के को बड़ी भूख लग रही है। दो केले दो।" सत्यवती ने कहा।

राहगीरों ने आकर सत्यवती से पूछा—"क्यों, क्या हो गया था?"

"वह दुष्ट, हम रास्ते में, जो केले खाने के लिए लाये थे, उन्हें हड़पना चाहता था। उसने मेरे लड़के को मारा। आप लोग समय पर आ गये, नहीं तो न मालूम यह क्या क्या करता?" सत्यवती ने कहा। उसने गुच्छे में से कुछ केले तोड़े और हरेक को चार चार दे दिये।

सत्यवती का लड़का इससे पहिले ही उठ गया था। जब सब ने कुछ केले खा लिए, तो सत्यवती ने बाकी केले पोटली में

बाँध लिए। लड़के को लेकर, शाम के समय रसौली पहुँची।

गाँव में पहुँचते ही, उसने पहिले घर में ही गौ बेचनेवालों के बारे में पूछताछ की। उसे मालूम हुआ कि गाँव के बीच में, चन्चूराम नाम का एक किसान था और उसके पास कुछ गौवें बिकाऊ थीं।

सत्यवती, लड़के को लेकर चन्चूराम के घर पहुँची। गौवें देखीं। वे अच्छी ही थीं। उसने बछड़े के साथ एक गौ पिछत्तर मुहरें देकर खरीदने का सौदा किया। उस दिन रात को, उसने और उसके लड़के ने चन्चूराम के घर ही खाना खाया। सवेरे होते ही, उसने कहा कि वह बछड़े और गौ को ले जायेगी।

रात को, माँ बेटे के लिए बरान्डे में बिस्तर लगाया गया। आधी रात के बाद चन्चूराम अन्दर से बाहर आया। दबी आवाज में उसने कहा—"लगता है, सो रहे हैं।"

सत्यवती सोई न थीं। परन्तु चन्चूराम का ईरादा जानने के लिए उसने यूँ दिखाया, जैसे सचमुच वह सो रही हो। चन्चूराम ने उनके बिस्तर के पास टटोला

बटोला। जब कुछ न मिला, तो वह अन्दर चला गया।

जब उसने दरवाजा बन्द कर लिया, तो सत्यवती उठी। चुपचाप दरवाजे पर कान लगाकर, वह सुनने लगी।

"कुछ नहीं मिला?" चन्चूराम की पत्नी ने पूछा।

"सवेरा होने दो....बाकी पच्चीस मुहरें भी किसी न किसी तरह उनसे ऐंठ लूँगा।" चन्चूराम ने अपनी पत्नी से कहा।

सत्यवती जब पिछत्तर मुहरें गिनकर दे रही थी, तो उसने देखा कि उसकी थैली में पच्चीस मुहरें और थीं। चन्चूराम ने वह थैली हथियानी चाही। परन्तु सोते समय सत्यवती ने वह थैली न सिरहाने रखी, न बिस्तर के नीचे ही। कमर में ही बाँधे रखी।

चन्चूराम को सबक सिखाने के लिए ही सत्यवती ने अपने लड़के से कहा—"तू गौवों के पास जा, दो गौवों को खोल दो और तुरत चले आओ।"

वह उठा....उसने दो गौवों को खोल दिया। फिर गौ की तरह रम्भाया। और अपनी जगह आकर इस तरह सो गया, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

यह देखने के लिए कि गौवें क्यों चिल्लायी थीं, चन्चूराम लालटेन जलाकर गया। दो गौवें नहीं थीं, उसने अपनी पत्नी को जगाया। फिर गौ को ढूँढने के लिए उसने पत्नी को, एक ओर भेजा और खुद एक तरफ़ गया।

उनके जाते ही सत्यवती लालटेन लेकर, घर में गई। वह जानती थी कि उसकी दी हुई, पिछत्तर मुहरें चन्चूराम ने किस सन्दूक में रखी थीं। उसने उनको ले लीं। थैली में डालकर, सन्दूक बन्द करके

दरवाजा बन्द करके जैसे पहिले सो रही थी वसे सो गई।

चन्चूराम और उसकी पत्नी गौवों को पकड़कर लाये और फिर उन्हें पिछवाड़े में बाँध दिया और सो गये।

सवेरा हुआ। सत्यवती ने चन्चूराम से कहा—"अब हम जायेंगे भाई साहब, रात हम खूब सोये। हमारी गौ और बछड़ा दे दीजिये।"

"पचीस मुहरें देकर अपनी गौ और बछड़े को हाँक ले जाओ।" चन्चूराम ने कहा।

"पचीस मुहरें क्यों?" सत्यवती ने पूछा।

"रात जो मेरे यहाँ ठहरी, तुमने और गौ ने जो खाया पिया? तुम नहीं जानती। यही यहाँ का रिवाज है।" चन्चूराम ने कहा।

चूँकि उसे मालूम न था, इसलिए उसने ऐसा दिखाया जैसे उसका अपमान किया गया हो, उसने थैली में से पचीस मुहरें दीं और गौ और बछड़े को लेकर, अपने लड़के के साथ निकल पड़ी।

वापिस जाते समय गाँव के बाहर के घर में सत्यवती रुकी। उसने घरवालों से

कहा—"जैसे तुम लोगों ने सुझाया था, वैसे ही हमने चन्चूराम को मुहरें देकर गौ और बछड़ा खरीद लिया है। अब हम जा रहे हैं।

घरवाली ने सत्यवती से कहा—"तुमने बताया था न कि तुम जौनपुर की हो। हमारी लड़की को हमने तुम्हारे गाँव के कृष्णराम को दे रखा है। रीठे वहाँ नहीं मिलते हैं, सुना है। लड़की को बड़ी तकलीफ हो रही है। एक डिब्बे में रीठे रखकर दूँगी। उसे ले जाकर, जरा हमारी लड़की को दे देना, तुम्हारा बड़ा भला होगा।"

"इसमें क्या रखा है, जरूर दूँगी।"

उस घर की स्त्री ने एक डिब्बा लाकर दिया, जिसे बड़ी हिफाजत से रस्सियों से बाँधा गया था। उसे लेकर वे फिर चल दिये।

दुपहर के समय उन्होंने एक पेड़ के नीचे विश्राम किया। थोड़ी देर बाद लड़के ने रस्सी से बन्धे डब्बे की ओर देखकर कहा—"इन रीठों पर तो चीटियाँ लग रही हैं।"

सत्यवती ने जब देखा, तो चीटियाँ डिब्बे के ढकन पर पंक्ति में जा रही थीं। उसने रस्सियाँ खोलीं। डिब्बे में बड़े बड़े लड्डू रखे थे।

माँ बेटे ने कुछ लड्डू खाये। फिर डब्बे पर ढकन रखकर उसे अपने गाँव ले गये।

उसके बाद सत्यवती ने डिब्बे के सारे लड्डू खा लिए और उसमें रीठे रख दिये। फिर डिब्बा बाँधकर वह कृष्णराम के घर गई। "आपकी बहू के ससुरालवालों ने उसके लिए रीठे भेजे हैं।" उसने वह डिब्बा उसको दे दिया।

उस डिब्बे में सचमुच रीठे देखकर कृष्णराम की बहू चकरायी।

असली हत्यारा

कभी एक गाँव में शुद्धाँक नाम का गुरु गुरुकुल चलाया करता था। कई विद्यार्थी उसके यहाँ पढ़ा करते थे।

एक दिन रात को किसी ने एक और आदमी को ईर्ष्यावश छुरे से मार दिया और छुरे के साथ शव को शुद्धाँक के घर के सामने छोड़कर चला गया।

सवेरे होते ही, शुद्धाँक ने दरवाजा खोला। शव को देखा। उसमें लगे छुरे को उसने बाहर निकाला। उसी समय शुद्धाँक को कई ने देखा। उन्होंने अफवाह उड़ायी कि शुद्धाँक ने किसी को मार दिया है और उन्होंने उसको यह कहते स्वयं अपनी आँखों देखा है।

सैनिकों ने आकर शुद्धाँक पर हत्या का अपराध थोपा। उसे वे राजा के पास ले गये। सुनवाई हुई। कई ने गवाही दी कि उन्होंने शुद्धाँक को छुरा लिए शव के पास खड़ा देखा था। जिसकी हत्या की गई थी, वह शुद्धाँक का बिल्कुल अपरिचित भी न था। उसके पास से शुद्धाँक ने कुछ दिन पहिले एक गौ खरीदी थी। उस समय सम्भव है, उन दोनों में कोई झगड़ा हुआ हो।

यह दिखाने के लिए कि शुद्धाँक ने हत्या नहीं की थी, न यह दिखाने के लिए ही कि हत्या किसी और ने की थी, कोई गवाही न थी, इसलिए राजा ने शुद्धाँक को दोषी ठहराया और उसे फाँसी की सजा दी। फिर उसने उससे पूछा—"तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है बताओ?"

"मैं दोषी हूँ कि नहीं, वे परमात्मा ही जानते हैं। कुछ भी हो, मुझे दो सप्ताह

वसन्तकुमार

की अवधि दीजिये। मैं अपने काम निबटाकर दण्ड भुगत लूँगा।" शुद्धाँक ने कहा।

"यदि तुम्हारे बदले कैद में रहने के लिए कोई मान जाये, तो तुम्हें दो सप्ताह के लिए छोड़ा जा सकता है। यदि तुम वापिस न आये, तो तुम्हारी सजा उसको भुगतनी पड़ेगी।" राजा ने कहा।

"मेरा तो ऐसा कोई आदमी नहीं है।" शुद्धाँक ने कहा।

गवाही जो थी सो थी परन्तु राजा को बिल्कुल विश्वास न था कि शुद्धाँक ने किसी को मारा था, या वह किसी को मार भी सकता था। सच मालूम करने के लिए मौका मिले तो, हत्यारे को पकड़ने के लिए राजा अपने मन में तरीके सोच रहा था। अब उसे एक तरीका सूझा। उसने शुद्धाँक से कहा—"अगर तुम्हारे बदले कोई न रहना चाहे तो मैं ही रहूँगा। तुम आज ही अपने गाँव चले जाओ। तुम दो सप्ताह में अपने काम निबटाकर, पन्द्रहवें दिन शाम तक वापिस आ जाना। सोलहवें दिन दुपहर को तुम्हें फाँसी दिल्वादूँगा।"

शुद्धाँक राजा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करके, अपने गाँव गया। उसने गुरुकुल को सक्रम रुप से चलाने के लिए व्यवस्था की और अपनी पत्नी और बच्चों के गुज़ारे के लिए भी एक सप्ताह में इन्तजाम कर दिया। फिर एक सप्ताह उसने जंगल में जाकर तपस्या करने का निश्चय किया और वह जंगल में ही रह गया।

इस तरह चौदह दिन गुज़र गये। अगले दिन निकलकर, शाम तक राजधानी पहुँचने के लिए निश्चय करके, शुद्धाँक चौदहवें दिन रात को कुटी में सो गया। परन्तु उस रात को चार आदमी आये, जो

चोर से दिखाई देते थे। वे शुद्धाँक को बाँधकर आँखें बाँधकर ले गये।

"अरे भाई, मुझे पकड़ने में तुम्हारा क्या फायदा है? मेरे पास एक कानी कौड़ी नहीं है। मुझे छोड़ दो। नहीं तो मुझे राजधानी पहुँचा दो। तुम्हारा भला होगा। परसों राजा मुझे फाँसी पर चढ़ा देंगे। कल मुझे अवश्य राजधानी पहुँचना है।" शुद्धाँक चोरों के सामने गिड़गिड़ाया।

आखिर वे शुद्धाँक को एक कोठरी में बन्द करके उस पर ताला लगाकर चले गये। जाने से पहिले उन्होंने उसके हाथ खोल दिये और फिर उसने स्वयं आँखों की पट्टी खोल ली।

पन्द्रहवें दिन शाम को शुद्धाँक के गाँव से एक आदमी आया। उसने राजा के दर्शन किये। "महाराज, आपने शुद्धाँक को छोड़कर गल्ती की है। एक सप्ताह से वह गाँव में नहीं दिखाई दे रहा है। सुना है। वह अभी तक राजधानी भी नहीं आया है।" उसने कहा।

राजा ने यह सुनकर उस आदमी से कहा—"हमारी सहायता करने का तुम्हारा उद्देश्य देखकर हम बहुत सन्तुष्ट हैं। हत्यारे के बारे में मैं मालूम कर लूँगा। जब तक उसे सजा न मिले आप हमारे अतिथि होकर रहिये।"
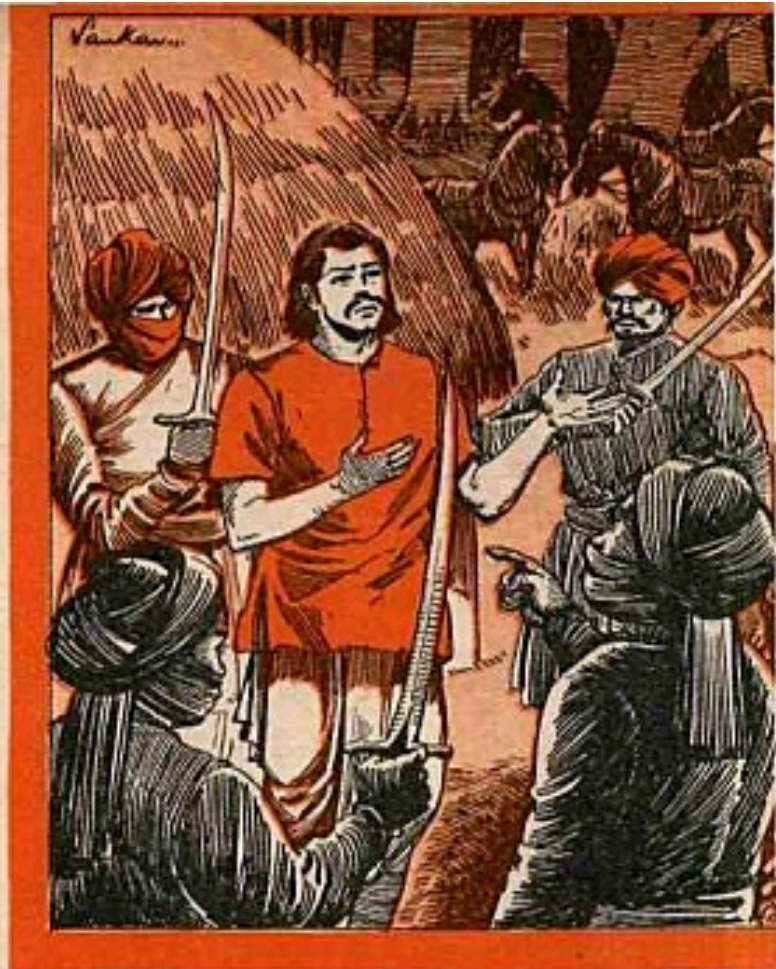
वह आदमी राजमहल में ही फँस गया। उसके आगे पीछे हमेशा सैनिक रहा करते।

अगले दिन हत्यारे की फाँसी देने का समय घोषित किया गया। बध्यस्थल पर हजारों आदमी जमा हो गये। पिछले दिन शाम को जो आदमी उससे मिला था, उसे लेकर, राजा भी वहाँ आया।

"महाराज, शुद्धाँक भाग गया है। सजा से बच गया है। अब किसे सजा

देंगे। यह सब प्रबन्ध किस लिए? जैसे भी हो, हत्यारे को पकड़वाइये।" शुद्धाँक के गाँव से आये हुए आदमी ने कहा।

"सजा तो होगी ही। शुद्धाँक को सजा नहीं मिलती है, तो मुझे दी जाये। क्योंकि मैं ही उसकी जगह रहने के लिए मान गया था। फिर भी तुम क्यों इतने उतावले हो रहे हो कि शुद्धाँक को सजा मिले।" राजा ने कहा।

उस आदमी का चेहरा फीका पड़ गया। राजा ने उसे छोड़ा नहीं। वह प्रश्न पर प्रश्न करता गया। उसको कुछ कुछ सच भी मालूम होने लगा। वह आदमी शुद्धाँक का निकट बन्धु ही था। दोनों कुटुम्बों में बहुत दिनों से झगड़ा चला आ रहा था। एक स्त्री के कारण उस सम्बन्धी ने गाँव के पशुओं के व्यापारी की हत्या कर दी थी और शुद्धाँक से बदला लेने के लिए उसने शव को लाकर, शुद्धाँक के घर के सामने रख दिया था।

ये सब बातें, जब राजा असली हत्यारे से मालूम कर रहा था, तो राजा के सैनिकों के साथ शुद्धाँक वहाँ आ ही गया। उसे चोरों के वेष में सैनिक ही पकड़ लाये थे और उसे एक कोठरी में रख रखा था और यह काम राजा की आज्ञा पर ही हुआ था।

उसने शुद्धाँक से कहा—"अब मालूम हो गया है कि आप निर्दोष हैं। अब आप स्वतन्त्र हैं। असली हत्यारे को मैं अभी फाँसी दिलवाता हूँ।"

जिस फाँसी पर सम्बन्धी सोच रहा था कि शुद्धाँक चढ़ाया जायेगा, उसे खुद चढ़ा दिया गया।
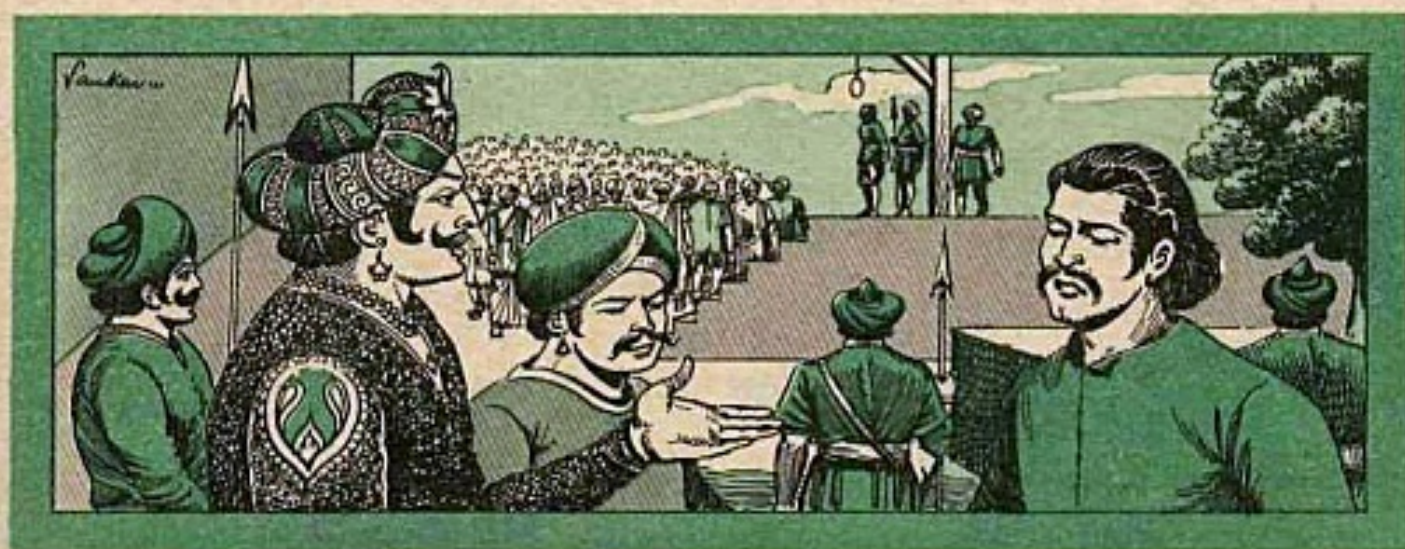
कपट दानशीलता

एक शहर में सुप्रतिष्ठ नाम का धनी रहा करता था। वह लालची तो था ही, फिर पाँच-दस में वह प्रतिष्ठा भी चाहता था। जब कोई अतिथि वगैरह आता, या भिखारी ही आता, अगर कोई देख रहा होता, तो उसको आतिथ्य देता, भीख देता, अगर कोई न होता, तो उसको भगा देता।

एक दिन दुपहर को सुप्रतिष्ठ जब किसी बड़े आदमी से बात कर रहा था तो एक बैरागी आया। उसने कहा—"मैं तुम्हारे घर अतिथि बनकर आया हूँ। मुझे भोजन दीजिये।"

सुप्रतिष्ठ मान गया। उसने एक सेवक को बुलाकर कहा—"इसको ले जाकर, भोजन खिलाकर भेज दो।"

सेवक बैरागी को उस जगह ले गया, जहाँ भिखारियों को खाना दिया जाता था। एक पत्तल में उसने कुछ चावल और चटनी लाकर, बैरागी के सामने रखा। उसने उस पत्ते की ओर देखा और गुस्से में सेवक से कहा—"तुम अपने मालिक को बुलाकर लाओ।"

सेवक मालिक के पास गया और उसने कहा कि बैरागी बुला रहा था। तब तक बड़ा आदमी चला गया था, इसलिए सुप्रतिष्ठ ने बैरागी के पास आकर, पूछा—"क्यों बे, क्या बात है?"

"मुझे मामूली भिखारी मत समझो, तुम सब जो भोजन करते हो, वही दो। तुम्हारा कल्याण होगा।" बैरागी ने कहा।

"जो परोसा गया है, उसे क्यों नहीं खाते? क्यों, धौंस जमा रहे हो? अरे,

राजेन्द्र

यह सुन सुप्रतिष्ठ चकित हुआ। बैरागी की ओर घूरकर देखा। फिर उसने सेवक से कहा—"उस बैरागी को यहाँ से भगा दो।" फिर वह स्नान करने के लिए घर के अन्दर चला गया। बैरागी भी वहाँ से चला गया।

यह सब रसोइया देख रहा था। बर्तनों में अच्छे-अच्छे पकवान रखकर, वह पिछवाड़े से भागा-भागा गया। उसने बैरागी से मिलकर कहा—"अच्छा खाना लाया हूँ। खाइये।" उसने यह भी बताया कि वह उस घर का रसोइया था और उसका भूखा चला जाना उसे बिल्कुल पसन्द न था।

"उस लालची का भोजन मुझे नहीं चाहिए।" बैरागी ने कहा।

"इसे आप मेरा हिस्सा समझकर, आज भोजन कीजिये।" रसोइये ने कहा।

"अरे अपना हिस्सा मुझे देकर, क्या भूखे पड़े रहोगे? यदि तुमने मेरे साथ भोजन किया, तो मैं खाऊँगा। नहीं, तो नहीं।" बैरागी ने कहा। रसोइया इसके लिए मान गया। दोनों ने एक पेड़ के नीचे बैठकर भोजन किया।

"आज तुमने मेरी भूख मिटायी है। तुम्हें एक बात बताता हूँ, जिससे तुम्हारा

खाने का इतना शौक है, तो क्यों बैरागी बने फिरते हो?" सुप्रतिष्ठ ने कहा।

"खाने का शौक क्या इतनी आसानी से जाता है? मैं एक साधक हूँ। हिमालय की ओर जा रहा था कि तुम्हारा मकान देखकर सोचा कि अच्छा खाना मिलेगा और चला आया। मुझे देखकर, अगर तुम कुछ और सोच रहे हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं है। मुझे तुम्हारा भोजन ही चाहिए। यदि तुम को कोई नई चीज़ें मिली हों, तो दिखाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। मुझे भोजन कराना व्यर्थ नहीं जायेगा।" बैरागी ने कहा।

कल्याण होगा। वह देखो, जो पहाड़ दिखाई दे रहा है, उसके पीछे जंगल है और उस जंगल में एक उजड़ा मण्डप है। अगर वहाँ जाकर रात भर लक्ष्मी मन्त्र कोई जपे, तो प्रातः होते ही उसे एक ऐसी वस्तु मिलेगी, जिससे इहलौकिक सौख्य मिल सकेंगे।" बैरागी यह कहकर चला गया।

जब रसोइये खाली बर्तन लेकर, घर वापिस आ रहा था, तो सुप्रतिष्ट ने पास जाकर पूछा—"कहाँ से आ रहे हो? वह बैरागी क्या हुआ?"

"उधर जा रहा है।" रसोइये के कहते ही, सुप्रतिष्ट उस तरफ़ भागा।

रसोइया डर रहा था न मालूम बैरागी को भोजन देने के कारण मालिक क्या कहे। पर उसको उस तरफ़ जाता देख, उसने सोचा कि आफ़त टल गई होगी।

सुप्रतिष्ट यदि बैरागी के पीछे भाग रहा था, तो इसका कारण था। बाग में जब वह नये पौधे खोद रहा था, तो एक खज़ानेवाला कलश मिला था। उसके अन्दर सोने की मुहरें थीं। सुप्रतिष्ट ने उसे एक कोने में छुपाकर रख दिया था।

बैरागी ने जब नई चीज़ की बात उठायी थी, तो झट उसे वह याद हो आयी। बैरागी के चले जाने के बाद, जब स्नान करके, उसने कलश देखा, तो वह खाली था। यह सोच कि बैरागी साधारण बैरागी न था, वह मन्त्रवेत्ता था, मन्त्रशक्ति से उसी ने वे मुहरें ले ली थीं, सुप्रतिष्ट ने मीठी मीठी बातें कहकर, बैरागी को मनाने की सोची। इसीलिए वह उस तरफ गया, जिस तरफ बैरागी गया था।

उसने बैरागी के पास पहुँचकर, विनयपूर्वक नमस्कार किया। "स्वामी, आपकी महिमा जाने बिना मैंने आप से कुछ ऊँटपटांग बक दिया था, मुझे क्षमा कीजिये। मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये। जो नई चीज़ मुझे मिली थी, वह गायब हो गई है। वह फिर मुझे मिले जाये, इसकी कृपा कीजिये।"

"मेरी भूल मिट गई है, परन्तु तुम्हें एक सलाह देता हूँ। वह जो पहाड़ दिखाई दे रहा है, उसके पार एक जंगल है। उस जंगल में एक उजड़ा मण्डप है। जो वहाँ जाकर, रात भर लक्ष्मी मन्त्र जपता है, उसको सवेरा होते ही, इह

लौकिक सुख पाने की वस्तु मिल जायेगी।" यह कहकर बैरागी चला गया।

क्या करता? सुप्रतिष्ट घर गया। दिन भर कुछ न कुछ सोचता रहा। अगले दिन जैसा कि बैरागी ने कहा था, वैसा करने का उसने निश्चय किया। भोजन की पोटली, छड़ी, छुरी साथ लेकर पहाड़ की ओर निकल पड़ा।

वहाँ पहुँचने में एक दिन लगता था। जब दुपहर को उसको भूख लगी, तो उसने एक जगह भोजन की पोटली खोली। इतने में एक बूढ़े ने आकर कहा—"बहुत भूख लग रही है, मुट्ठी भर भोजन दीजिये।"

सुप्रतिष्ट ने उस बूढ़े से खिझकर कहा—"गाँव में जाकर भीख माँगो।" जब उठकर वह जाने लगा, तो एक बुढ़िया बच्चे को लिए आयी। उसने कहा—"बाबू, यह बच्ची रो रही है कि मैं इसे गोद में ले लूँ। सिर पर लकड़ी का गट्ठर है। भला मैं कैसे इसे गोदी में ले लूँ? जरा आप इसे उठाकर, जो वह झोंपड़ी दिखाई दे रही है, वहाँ तक आइये।"

"क्या मेरा यही काम है? जब लकड़ी लाने गई थी, तो लड़की क्यों साथ ले गई थी? जा जा!" कहकर सुप्रतिष्ठ आगे चला गया।

जब उसने पहाड़ पार कर लिया, तो एक अन्धे ने उसके आने की आहट सुनकर कहा—"कोई पुण्यात्मा है। मैंने अपनी लाठी खोदी है। जरा एक टहनी तोड़कर उसकी लाठी बनाकर, मुझे देते जाइये।"

सुप्रतिष्ठ ने अन्धे की न सुनी। आगे चलता गया और जंगल में मण्डप में पहुँच गया। ताकि हिंसक जन्तु न आयें। इसलिए उसने ईंधन लाकर आग बनाई। छुरी और छड़ी लेकर, बगल में रखकर सवेरे तक लक्ष्मी मन्त्र जपता रहा। प्रातःकाल हो गया। लक्ष्मी ने उसको दर्शन न दिया। कोई वस्तु भी न मिली। उसने सोचा कि उस चोर बैरागी ने उसे धोखा दिया था। उसे खूब दुत्कारा। फिर घर वापिस चला गया और उसने उस रसोइये को घर से निकाल दिया, जिसने उस बैरागी को खाना किया था।

उसकी माँ थी और बहिन थी। उन दोनों का भरण-पोषण का भार उस पर था। इसलिए जैसा बैरागी ने कहा था, वैसा करने का निश्चय किया। वह भी दो चार रोटियाँ लेकर, पहाड़ की ओर निकला। रास्ते में उसने भिखारी को एक रोटी दे दी। लकड़ी चुननेवाली बुढ़िया की लड़की को उसकी झोंपड़ी तक ले गया। अन्धे को उसने लाठी बनाकर दी। अन्धेरा होते होते वह मण्डप पहुँचा। लक्ष्मी मन्त्र जपते जपते सो गया। उसने बहुत प्रयत्न किया, पर वह रात भर जागा न रह सका।

फिर भी जब वह सवेरे सोकर उठा, तो उसकी बगल में सोने के मुहरों की गठरी थी। उसको उसका दारिद्र्य जाता रहा और वह सुख से रहने लगा।

रावण राम की चोट न सह सका और भाग गया। फिर राम उस जगह गये, जहाँ लक्ष्मण पड़ा हुआ था। साँस धीमे-धीमे चल रही थी, राम अपने भाई को उस हालत में देखकर घबराये। सुषेश ने राम को बताया कि लक्ष्मण को प्राण का भय न था। फिर उसने हनुमान से कहा—"जाम्बवन्त ने जिस औषधी पर्वत के बारे में कहा था उसके दक्षिण शिखर से चार तरह की औषधियाँ ले आओ।"

हनुमान औषधी पर्वत के पास गया। पर वह औषधियों को न पहिचान सका। उसने इसलिए सारे पहाड़ को ही उठाकर ले जाने की सोची, उसमें लक्ष्मण के लिए आवश्यक औषधी कहीं न कहीं होगी ही।

उसने औषधी पर्वत को तीन बार इधर उधर हिलाया। फिर उसे उठाकर, वह युद्धभूमि में मँड़राया। "तुमने जो दवाइयाँ बताई थीं, उन्हें तो मैं न पहिचान सका। इसलिए सारा शिखर ही उठा ले आया हूँ।" हनुमान ने सुशेष से कहा।

सुशेष ने औषधी ली, उसे पीसा और उसके रस को लक्ष्मण की नाक में डाला। उसकी सुगन्ध सूँघते ही लक्ष्मण उठकर बैठ गया।

लक्ष्मण के यह कहते ही राम ने स्थिर चित्त हो धनुष हाथ में लिया। इस बीच रावण भी एक और रथ में सवार होकर, युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर आया। राम भूमि पर थे और रावण रथ पर और दोनों में युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इतने में इन्द्र का सारथी पातली देवलोक से और एक दिव्य रथ, कवच, धनुष और बाण और शक्ति लेकर, उस जगह आया, जहाँ राम थे। उसने उनसे कहा—"राम, देवेन्द्र ने तुम्हारे लिए ये सब भेजे हैं। इस रथ पर सवार होकर, तुम रावण को मारो।" राम ने रथ की प्रदक्षिणा की और नमस्कार करके, उसमें सवार हो गये।

दोनों ने एक दूसरे पर महास्त्रों का उपयोग किया। एक अस्त्र ने दूसरे के अस्त्र को काट दिया। कुछ देर रावण ने इस प्रकार युद्ध किया कि राम के हाथ पैर निकम्मे हो गये। उसने वज्र के समान शूल का, जब राम पर उपयोग किया, तो राम उसे अपने बाणों से न रोक सके और उन्होंने इन्द्र द्वारा भेजी हुई शक्ति से, उसको ध्वंस कर दिया।

राम ने अपने भाई का आलिंगन करके, आनन्दाश्रु बहाते हुए कहा—"लक्ष्मण! तुम मेरे सौभाग्यवश मरकर फिर जीवित हो उठे हो। अगर तुम गुज़र जाते, तो मैं सीता पाकर भी क्या करता? युद्ध में विजय भी किस काम की?"

यह सुन लक्ष्मण ने कहा—"क्यों बलहीन की तरह बातें कर रहे हो? रावण को मारकर, विभीषण को राजा बनाने का वचन क्या नहीं निभाओगे? मेरे बारे में निराश न हो। रावण को युद्ध में मार दो।"

उसके बाद राम को भयंकर रूप से लड़ता देख, रावण हक्का-बक्का रह गया। वह आत्म रक्षा भी न कर पा रहा था। यह देख, रावण का सारथी उसके रथ को युद्ध भूमि से दूर ले जाने लगा।

रावण को अपने सारथी पर क्रोध आ गया। "अरे पगले, क्या मैं डरपोक हूँ? नलायक हूँ? क्या मेरे पास अस्त्र नहीं है? क्या मुझ में अक्ल नहीं है? क्या सोचकर तुम रथ को युद्धभूमि से ले जा रहे हो? तुमने तो हमको बदनाम ही कर दिया? क्या तुमको शत्रु ने कहीं कोई घूँस दे दी है? तुरत रथ कौ पीछे ले जाओ।" उसने अपने सारथी से कहा।

"महाराज, तुम्हारे हित के लिए, मैंने रथ को पीछे हटाकर, अपना धर्म निभाया है। तुम राम का युद्ध में सामना नहीं कर पा रहे हो। भयंकर युद्ध करते तुम थक गये हो। घोड़े भी थक गये हैं। तुम्हारे और उनके विश्राम के लिए मैंने ऐसा काम किया है। यदि मैं यह न जानूँ कि रथ कब कैसे चलाया जाये, तो तुम्हारा सारथी ही नहीं हूँ। अब बताओ

कि क्या किया जाये, वैसा ही करूँगा।" रावण के सारथी ने कहा।

रावण ज़रा सम्भला। उसने अपने सारथी की कुछ प्रशंसा की। "राम के सामने रथ को ले जाओ।" फिर उसका रथ राम के सामने आया।

उस समय राम भी पूरी तरह थक गये थे और रावण से युद्ध करने की स्थिति में न थे।

यह देख, युद्ध को देखने के लिए आये हुए अगस्त्य ने राम के पास जाकर कहा—"राम, तुम्हें मैं आदित्य हृदय बताता हूँ। उसे जपकर, शक्तिवान होकर, रावण से युद्ध करो।" उसने राम को आदित्य हृदय बताया। राम ने उसको तीन बार जपा। दुगना बल पाकर, बाण लेकर, रावण से युद्ध करने आगे बढ़े।

उसने पातली से कहा—"इस बार अवश्य रावण को मार दूँगा। तुम रथ को अच्छी तरह चलाओ। तुम तो देवेन्द्र के सारथी हो, तुम्हें खास कहने की ज़रूरत नहीं है। तुम पीछे न हटना, बस, यही याद दिलाना चाहता हूँ।"

पातली ने रथ को इस तरह चलाया कि उसकी धूल ने रावण को घेर लिया। वह रावण की ओर रथ ले गया। रावण ने क्रुद्ध होकर, राम पर बाण छोड़े। राम ने इन्द्र के भेजे हुए धनुष बाण से, रावण से युद्ध करना शुरु किया।

राम और रावण में इतना भयंकर युद्ध हुआ कि दोनों तरफ़ के लोग युद्ध करना छोड़कर, उनका द्वन्द्व युद्ध देखने लगे। दोनों ने पराक्रम यूँ दिखाया, मानों वह उनका अन्तिम युद्ध हो।

जब राम रावण यूँ भयंकर युद्ध कर रहे थे, तो राम द्वारा चलाये गये तेज़

बाण से रावण का सिर कटकर, ज़मीन पर गिर गया। पर उसी समय रावण का एक और सिर उग आया। राम ने उसे भी काट दिया। वह अभी नीचे गिर ही रहा था कि रावण का एक और सिर उग आया।

इस प्रकार राम ने एक सौ एक बार रावण का सिर काटा, तब भी वह रावण का कुछ न बिगाड़ सके। राम न समझ पा रहे थे कि कैसे उनके सारे अमोघ अस्त्र रावण पर बेकार साबित हुए थे।

राम और रावण, इस प्रकार बिना विश्राम के सात दिन और सात रात युद्ध करते रहे। यह देख पातली ने राम से कहा—"क्यों नहीं इसे मार देते हो? क्या आगे पीछा देख रहे हो? इस पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करो।"

पातली के यह कहते ही राम ने एक महासर्प-सा बाण निकाला। प्रकाशमान उस बाण को ब्रह्मा ने कभी इन्द्र के लिए तैयार किया था, वह भारी था। उसमें पंख थे। वज्र के समान था। वह और अस्त्रों को काट सकता था। राम ने उस बाण को चढ़ाया। कोई मन्त्र पढ़ा और उसे रावण पर छोड़ दिया। वह रावण के छाती पर लगा, फिर पीठ में से निकल गया। रावण के हाथ से धनुष बाण गिर गये और निष्प्राण हो, रथ से गिर गया।

यह देख, जो राक्षस मरने से बच गये थे, वे भाग उठे। बानर हाथ में पेड़ लेकर, उन राक्षसों का पीछा करने लगे। रावण के मरते ही, देवता दुन्दुभी बजाने लगे। पुष्पवर्षा करने लगे। भूमि पर वानर और आकाश में देवताओं ने राम की एक साथ प्रशंसा की। राम, सुग्रीव,

"रावण, कामी की मौत नहीं मरा है, वीर की तरह वह लड़ा और मर गया। युद्ध में जय और पराजय भाग्य के आधीन है। बड़े-सा बड़ा वीर भी शत्रु के हाथ मारा जा सकता है। वीर की मृत्यु पाकर, वीरस्वर्ग पानेवाले के लिए क्यों दुःखी होते हो?"

राम की अनुमति पर विभीषण अपने भाई का शास्त्रोक्त रीति से दहन संस्कार करने का उपक्रम करने लगा।

यह जानते ही कि रावण की मृत्यु हो गई है, उसकी पत्नियाँ रोती रोती उत्तर द्वार से बाहर निकलीं और रावण के शव को ढूँढ़ती ढूँढ़ती आयीं। आखिर उन्होंने उसके शव को देखा। उस पर पड़कर वे छाती पीट पीटकर रोने लगीं। उन्होंने कहा यदि विभीषण के कहने पर सीता को वापिस राम को दे देते, तो यह सब न होता। मन्दोदरी रो रही थी—"तीनों लोकों को जीतकर, देवताओं को डराकर, क्या तुम्हें एक मामूली आदमी के हाथ ही मरना था?"

"इन स्त्रियों को घर भेज दो और तुम अपने भाई का दहन संस्कार करो।"

अंगद, कृतकृत्य होकर, बड़े सन्तुष्ट हुए और वानर प्रमुख, विभीषण ने राम, लक्ष्मण के चारों ओर खड़े होकर, उनकी प्रशंसा की।

भाई के मर जाने पर विभीषण दुःखी हुआ। सीता के अपहरण के कारण रावण का नाश हो गया था। अन्यथा वह कई दृष्टि से महापुरुष था। बड़ा पंडित था। निष्ठावान था। असमान शूर और पराक्रमी था।

भाई की मृत्यु पर विभीषण को आश्वासन देते हुए राम ने कहा—
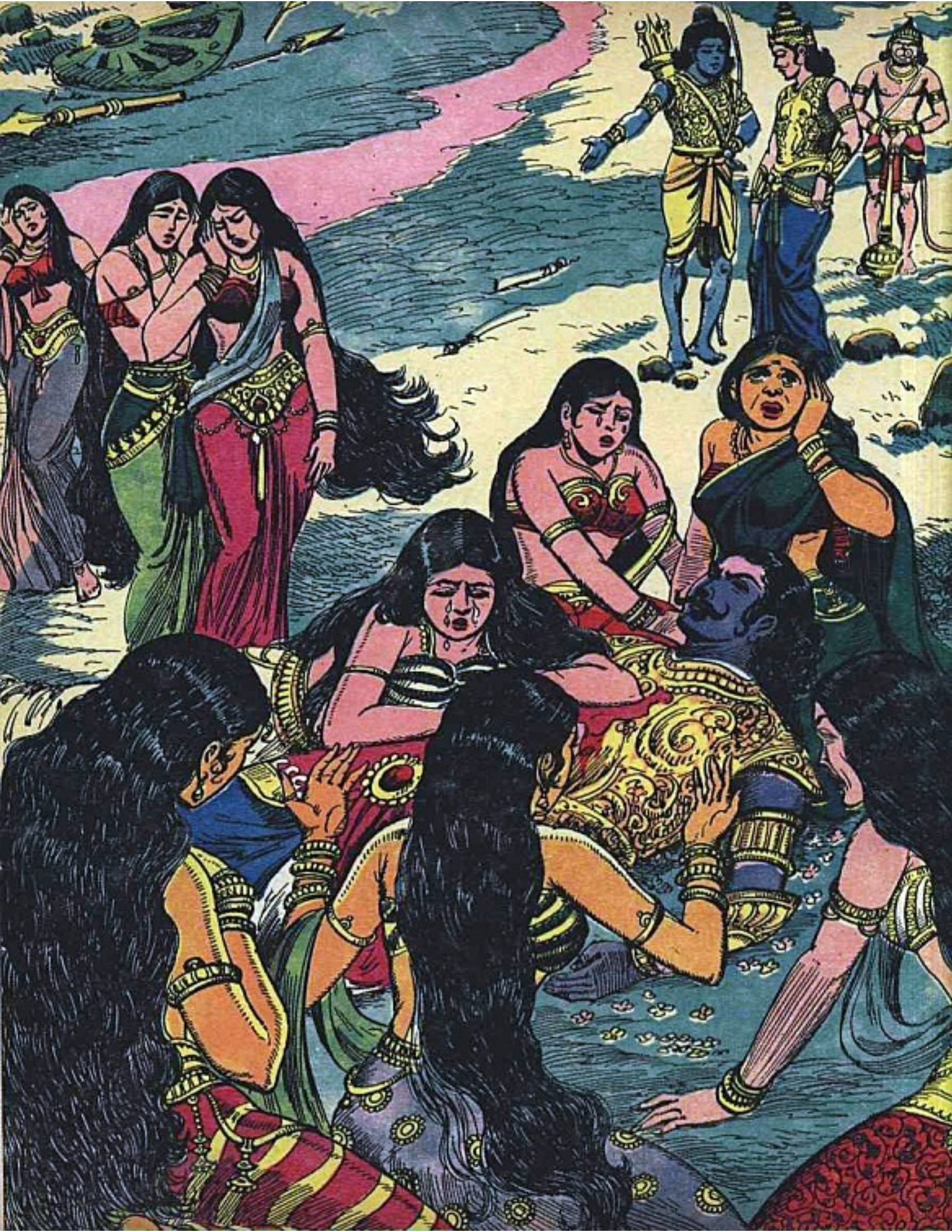
राम ने विभीषण से कहा। दुष्ट, बदचलन अपने भाई का, उसका दहन संस्कार करना ठीक था कि नहीं, विभीषण को सन्देह हुआ। राम के यह कहने पर कि उसे ही संस्कार करना चाहिए था, वह संस्कार के लिए तैयार हो गया।

ब्राह्मणों ने चन्दन की लकड़ियों से चिता बनवाई और उस पर एक कम्बल बिछाया गया। रावण के शव को अलंकृत करके चिता पर लिटा दिया गया। विभीषण ने चिता को आग दिखाई। फिर उसने गीले वस्त्र पहिनकर, जल दिया। स्त्रियों को लंका भेजकर, राम के पास आया।

युद्ध को देखने के लिए आये हुए देव, दानव, गन्धर्व आदि राम के पराक्रम और वानरों के युद्ध के बारे में बातें करते करते अपने घर चले गये। राम ने पातली का सम्मान करके उसको रथ के साथ स्वर्ग भेज दिया। फिर राम ने कृतज्ञतापूर्वक सुग्रीव का आलिंगन किया। लक्ष्मण के साथ शिविर गये।

तब उन्होंने लक्ष्मण से कहा—"अब सबसे मुख्य काम, विभीषण का लंका के राजा के रूप में राज्याभिषेक करना है। वह काम जल्दी करवाओ।"

लक्ष्मण ने वानरों को सुवर्ण कलश देकर, समुद्र जल मँगवाया। उसने विभीषण को सिंहासन पर बिठाकर, उस जल से अभिषेक किया। विभीषण के मन्त्री और उसके मित्र राक्षस बड़े खुश हुए। विभीषण ने प्रजारंजक बातें कहीं। राक्षस प्रजा ने उसको तरह तरह के उपहार और पुरस्कार दिये। विभीषण ने राम और लक्ष्मण को दिव्य वस्तुयें उपहार में दीं।

सुदर्शन की कथा

सूर्यवंशी राजा ध्रुवसन्धि कभी अयोध्या को राजधानी बनाकर कोशल देश पर राज्य किया करता था। उसकी मनोरमा और लीलावती नाम की दो पत्नियाँ थीं। मनोरमा के सुदर्शन और लीलावती के शत्रुजित नाम के लड़के हुए। दोनों लड़कों में शत्रुजित चूँकि अधिक गुणी था इसलिए ध्रुवसन्धि को उस पर अधिक प्रेम था।

एक बार ध्रुवसन्धि शिकार खेलने गया और शेर से घायल किये जाने पर मर गया। तब उसके मन्त्रियों ने शत्रुजित का, राज्याभिषेक करने का निश्चय किया। लीलावती के पिता और शत्रुजित के नाना ने इस निश्चय का समर्थन किया।

परन्तु मनोरमा के पिता वीरसेन ने कहा कि उसके नाती सुदर्शन का ही, क्योंकि वह राजा का बड़ा लड़का था, राज्याभिषेक होना चाहिए। इस कारण यथाजित और वीरसेन में युद्ध के होने तक की नौबत आयी।

इस युद्ध में मनोरमा का पिता और सुदर्शन का नाना वीरसेन मारा गया। उसका पक्ष हार गया। मनोरमा असहाय हो, अपने लड़के सुदर्शन के साथ कहीं चली गई। गंगा के किनारे चोरों ने जो कुछ उनके पास था, वह लूट लिया। उसके साथ लड़के के अलावा मन्त्री और एक दासी भी थी।

वे चारों गंगा पार करके, त्रिकूटपर्वत के पास जब भारद्वाज आश्रम के पास से जा रहे थे, तो वहाँ रहनेवाले एक ऋषि ने मनोरमा को देखकर पूछा—"तुम कौन

हो? कहाँ इधर जा रही हो? मनोरमा ने अपने मन्त्री से अपना सारा वृत्तान्त उस ऋषि को सुनवाया। उस ऋषि ने सब सुनकर, उनको अपने आश्रम में रहने के लिए कहा और उनका उसने बहुत आदर सत्कार किया।

कुछ समय बाद मनोरमा को मालूम हुआ कि शत्रुजित का नाना यथाजित कुछ जंगलियों को साथ लेकर, सुदर्शन को मारने आ रहा था। वह घबराकर, भारद्वाज के पैरों पर पड़ी। भारद्वाज ने उससे कहा कि वह न डरे और यथाजित के दुष्टप्रयत्न को असफल करने का यत्न करने लगा।

परन्तु यथाजित ने सुदर्शन को मारने का संकल्प कर रखा था। नहीं तो उसको भय था कि उसके नाती शत्रुजित का राज्य निष्कंटक न हो सकेगा। इसी भय के कारण यथाजित ने भारद्वाज मुनि की आज्ञा का भी धिक्करण करना चाहा। परन्तु उसके मन्त्रियों ने इसके विरुद्ध सलाह दी। उन्होंने कहा कि कभी विश्वामित्र, वशिष्ट की कामधेनु जबर्दस्ती पकड़कर बिगड़ गया था।

यह कहानी सुनकर यथाजित डर गया। भारद्वाज के पैरों पर पड़कर, उसने क्षमा माँगी। उसके क्षमा करने के बाद वह अपने राज्य को वापिस चला गया।

सुदर्शन ने उसी आश्रम में सब विद्याओं का अभ्यास किया। भारद्वाज से उसने एक मन्त्र भी पाया जिसका पठन करने पर उसको पाँच साल बाद फल मिला। सुदर्शन का ग्यारहवें वर्ष उपनयन हुआ। फिर उसको धनुर्वेद और नीतिशास्त्र सिखाया गया। वह जब ये सीख रहा था, तो एक दिन लाल फूल मालायें पहिने, लाल कपड़े पहिनकर अम्बा दिखाई दी। उसको देखते ही सुदर्शन ने साष्टान्ग नमस्कार किया। उसने उनको आशीर्वाद देकर दिव्य धनुष बाण दिये। फिर वह अन्तर्धान हो गई।

थोड़ा समय गुजरा। एक दिन काशी राजा सुबाहु की लड़की शशिकला को सपने में पार्वती दिखाई दी और उसने उसको आशीर्वाद दिया। "सुदर्शन तुम्हारा पति होगा।" इस कारण शशिकला को सुदर्शन पर अत्यन्त प्रेम होने लगा। जब उसने सुदर्शन के बारे में पूछताछ

कीं, तो पता लगा कि वह फलाना देश का राजकुमार था। उसे प्रेम के साथ विरहबाधा भी होने लगी।

उसी समय श्रृंगिवेरपुर के राजा ने सुदर्शन की दुस्थिति के बारे में जानकर, उसको एक रथ उपहार में देना चाहा। तभी आश्रम के मुनियों ने उससे कहा— "इस लड़के को तुम अपने साथ ले जाओ।" सुदर्शन उस राजा के साथ श्रृंगिवेरिपुर चला गया।

जल्दी की शशिकला के स्वयंवर की व्यवस्था की गई। स्वयंवर में सुदर्शन भी शामिल हुआ। शशिकला ने वर माला हाथ में लेकर, किसी राजकुमार को देखा तक नहीं, सीधे जाकर वनवासी सुदर्शन के गले में उसे डाल दिया। उससे उसने विवाह कर लिया।

जब वह अपनी पत्नी को लेकर, रथ में सवार हो अयोध्या आ रहा था, तो उसका भाई बड़ी सेना लेकर उसका विरोध करने आया। भयंकर युद्ध हुआ। जब उसको इतनी बड़ी सेना से मुकाबला करना पड़ा, तो सहसा उसको अम्बा स्मरण हो आयी। तुरत वह सिंह के वाहन पर शत्रु सेना में प्रत्यक्ष हुई। उन पर दिव्यास्त्र बरसाकर उनको तहस नहस कर दिया।

फिर सुदर्शन पत्नी के साथ अयोध्या पहुँचा। शत्रुजित की माँ लीलावती को उसने आश्वासन दिया। फिर वैभवपूर्वक उसने अपना राज्याभिषेक करवाया। अम्बा के लिए एक सुवर्ण विमान तैयार करवाया। उसमें उसकी प्रतिष्ठा करके, नित्य पूजा और नवरात्रि उत्सव करवाकर वह उस देवी की दया का पात्र बन गया।

संसार के आश्चर्य :

४२. युनकांग की गुफायें

जिस प्रकार हमारे देश में अजन्ता और एलोरा शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है, उसी तरह चीन में यूंकाग की गुफायें प्रसिद्ध हैं। इन गुफाओं को, जिनमें बौद्ध मूर्तियाँ हजारों की संख्या में हैं १५०० वर्ष पूर्व उत्तरवेय राजाओं ने बनवाया था। ये गुफायें पूर्वी शान्सी प्रान्त में हैं। इनकी संख्या ३० हैं।

Photo by A. L. Syed
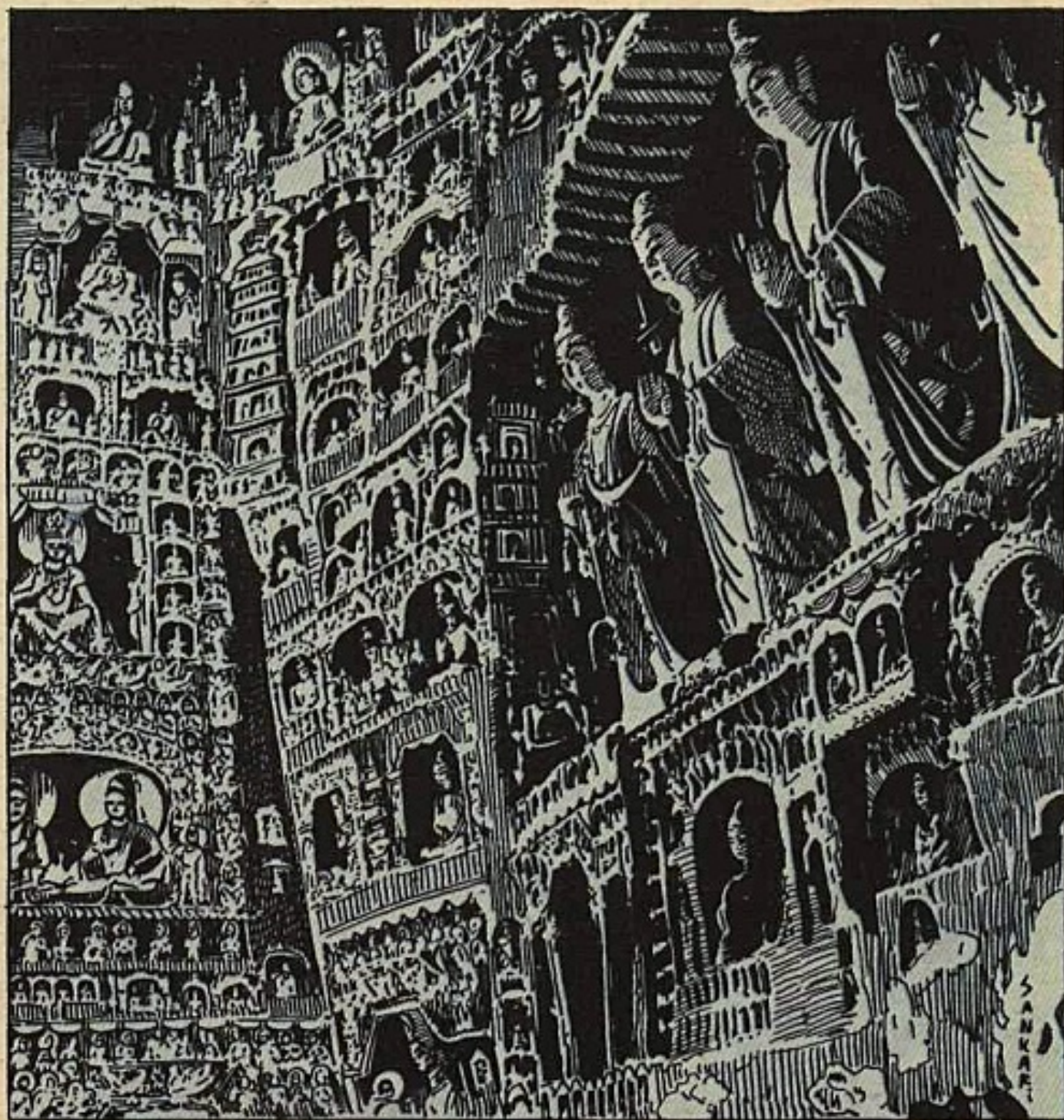
पुरस्कृत
परिचयोक्ति

पश्चिम समाज को यह रीति प्यारी !

प्रेषक :
गोपाल प्रसाद अग्रवाल - नैनी

Photo by A. L. Syed

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

भारतीय समाज की प्रतीक नारी !!

प्रेषक :
गोपाल प्रसाद अग्रवाल - नैनी

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

अगस्त १९६५ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें !

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिखकर निम्नलिखित पते पर तारीख ७ जून १९६५ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन,
वड्पलनी, मद्रास-२६

जून – प्रतियोगिता – फल

जून के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १० रुपये का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो: **पश्चिम समाज को यह रीति प्यारी!**

दूसरा फ़ोटो: **भारतीय समाज की प्रतीक नारी!!**

प्रेषक: **गोकुल प्रसाद अग्रवाल,**

अग्रवाल कोल्ड स्टोरेज, २४ इन्डस्ट्रियल कॉलनी, नैनी - इलाहाबाद

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Private Ltd., and Published by B. VENUGOPAL REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3 Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'

73